मुनि नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव : एक परिचय

डा० फूलचन्द्र जैन प्रेमी
अध्यक्ष जैनदर्शन विभाग
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

जैन साहित्य के इतिहास में नेमिचन्द्र नाम के अनेक लेखकों का उल्लेख मिलता है। गोम्मटसार, त्रिलोकसार आदि शौरसेनी प्राकृत ग्रन्थों के सुप्रसिद्ध रचयिता आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती (दसवीं शती ई०) को ही अधिकांश लोग द्रव्यसंग्रह का कर्ता मानते हैं, किन्तु कुछ विद्वानों के महत्त्वपूर्ण अनुसंधान ने दोनों लेखकों की भिन्नताएँ स्पष्ट कर दीं हैं। उनके अनुसार द्रव्यसंग्रह के रचयिता आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती नहीं, अपितु मुनि नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव (ईसा की ११वीं शती का अन्तिमपाद और विक्रम की १२वीं शती का पूर्वार्द्ध) हैं। यह द्रव्यसंग्रह की अन्तिम गाथा और इसके संस्कृत वृत्तिकार ब्रह्मदेव (विक्रम सं० ११७५) के प्रारम्भिक कथन से भी स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त ग्रन्थकार के विषय में अन्य जानकारी उपलब्ध नहीं होती।

ब्रह्मदेव के अनुसार धारा नरेश भोजदेव के राज्यान्तर्गत वर्तमान (कोटा राजस्थान) के समीप केशोरायपाटन जिसे प्राचीन काल में आश्रम कहते थे, में द्रव्यसंग्रह की रचना मुनिसुव्रत के मन्दिर में बैठकर नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव ने की। उस समय यहाँ का शासक श्रीपाल मण्डलेश्वर था। राणा हम्मीर के समय केशोरायपाटन का नाम 'आश्रमपत्तन' था।

ब्रह्मदेव ने अपनी वृत्ति के प्रारम्भिक वक्तव्य में यह भी स्पष्ट किया है कि श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव ने प्रारम्भ में मात्र २६ गाथाओं में इसकी रचना 'लघु-द्रव्यसंग्रह' नाम से की थी, बाद में विशेष तत्त्वज्ञान के लिए उन्होंने इस (५८ गाथाओं से युक्त) "बृहद्-द्रव्यसंग्रह" की रचना की। इन दोनों रूपों में वर्तमान में यह ग्रन्थ उपलब्ध भी होता है।

द्रव्यसंग्रह अथवा बृहद् द्रव्यसंग्रह को ब्रह्मदेव ने इसे शुद्ध और अशुद्ध स्वरूपों का निश्चय और व्यवहार नयों से कथन करने वाला अध्यात्म-शास्त्र कहा है। शौरसेनी प्राकृत की ५८ गाथाओं वाले प्रस्तुत अनुपम लघु ग्रन्थ में छह द्रव्य, सात तत्त्व, पाँच अस्तिकाय, नौ पदार्थ तथा

निश्चय एवं व्यवहार मोक्षमार्ग का अत्यन्त सरल एवं सुबोध भाषा एवं शैली में वर्णन करके ग्रन्थकार ने "गागर में सागर" की उक्ति को चरितार्थ किया है। इसमें विषय का विवेचन लाक्षणिक शैली में किया गया है। इसका यह वैशिष्ट्य है कि प्रत्येक लक्षण द्रव्य और भाव (व्यवहार और निश्चय) दोनों दृष्टियों से प्रस्तुत किया गया है। इसी कारण लाक्षणिक ग्रन्थ होकर भी "अध्यात्मशास्त्र" के रूप में ही इसकी महत्ता सामने आती है। इस ग्रन्थ में उपर्युक्त विषयों के साथ ही पंच-परमेष्ठी तथा ध्यान का भी संक्षेप में विवेचन है किन्तु प्रारम्भ में द्रव्यों का विशेष कथन होने से इसका नाम "द्रव्यसंग्रह" रखा गया। लघु होते हुए भी इस ग्रन्थ में जैनधर्म सम्मत प्रायः सभी प्रमुख तत्त्वों का जितना व्यवस्थित, सहज और संक्षेप रूप में स्पष्ट विवेचन किया गया है वैसा सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में दुर्लभ है।

मूल ग्रन्थ में विषयानुसार अधिकारों का विभाजन न होते हुए भी वृत्तिकार ब्रह्मदेव ने इसे मुख्यतया तीन अधिकारों में विभक्त किया है। षट्द्रव्य-पञ्चास्तिकाय-प्रतिपादक प्रथम अधिकार आरम्भिक २७ गाथाओं से युक्त है। गाथा सं० २८ से गाथा सं० ३८ तक कुल ११ गाथाओं वाला दूसरा अधिकार 'सप्ततत्त्व-नवपदार्थ' प्रतिपादक है। 'मोक्षमार्ग-प्रतिपादक' नामक तृतीय अधिकार में ३९वीं गाथा में ४६वीं गाथा तक की इन आठ गाथाओं में व्यवहार और निश्चय मोक्षमार्ग सुन्दर विवेचन किया गया है। बादकी दो गाथाओं में मोक्षमार्ग प्राप्ति का साधन ध्यान तथा ध्यान के आलम्बन (ध्येय) पंचपरमेष्ठी का सार-भूत विवेचन करके अन्तिम (५८वीं) स्वागताछन्द की इस गाथा में ग्रन्थकार ने अपने नाम निर्देश के साथ अपनी लघुता प्रकट की है।

द्रव्यसंग्रह का उपर्युक्त विषयों का प्रतिपादन अत्यन्त प्रामाणिक और सारभूत देखकर परवर्ती अनेक आचार्यों ने इस ग्रन्थ की गाथाओं को अपने विषय पुष्टि के रूप में उद्धृत करके द्रव्यसंग्रह के प्रति अपना गौरव प्रकट किया है। वृत्तिकार ब्रह्मदेव ने तो "भगवान् सूत्रमिदं प्रति-पादयति" कहकर द्रव्यसंग्रह की गाथाओं को सूत्र और और ग्रन्थकर्ता को भगवान् शब्दों से सम्बोधित करके इस ग्रन्थ की श्रेष्ठता और पूज्यता मान्य करके बहुमान बढ़ाया है। सरल, लघु और सारभूत आदि विशेष-ताओं से युक्त यह ग्रन्थ प्रारम्भ से ही अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। अतः संस्कृत, भाषावचीवनिका (ढूँढारी अथवा पुरानी हिन्दी), हिन्दी अंग्रेजी

तथा अन्यान्य अनेक भारतीय भाषाओं में इसके अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। अनेक विश्वविद्यालयों एवं संस्थानों में पाठ्यग्रन्थ के रूप में भी यह निर्धारित है।

प्रस्तुत संस्करण में मूलग्रन्थ की गाथाओं में प्रतिपाद्य विषयों के साथ ही अनेक सम्बद्ध विषयों का विस्तृत एवं तुलनात्मक विवेचन होने से यह सर्वत्र समादृत भी हुआ है। इस लोकप्रिय ग्रन्थ के सम्पादक, अनुवादक, प्रेरक और प्रकाशक सभी के प्रति अपना आदर सहित आभार व्यक्त करते हैं।

●

दो शब्द

तत्त्व-बोध एक मौलिक विधा है जो हर व्यक्ति के लिए आवश्यक है। आज का मानव विज्ञान, राजनीति आदि बड़े-बड़े रहस्यों को जानता है, किन्तु दर्शन, धर्म और तत्त्व-ज्ञान का जहाँ तक प्रश्न है वह सर्वथा कोरा है। दार्शनिक तत्त्वों की जानकारी न होने के कारण सुख व शान्ति की उपलब्धि उनको नहीं हो पा रही है। जिस लक्ष्य को हम प्राप्त करना चाह रहे थे, वह नहीं हो पा रहा है। इसी दृष्टि को रखकर आचार्यों ने धर्म का रहस्य हम सबको बताया।

आज की नयी पीढ़ी विशेषकर नये-नये आकर्षक साहित्य पढ़ने में रुचिवान है। परम पू० अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी, विदुषी आर्यिका बाल ब्रह्मचारिणी सौम्यमूर्ति १०५ स्याद्वादमती माता जी ने आधुनिक समय को देखते हुए प्रश्नोत्तर रूप में 'द्रव्य संग्रह' नामक ग्रन्थ की हिन्दी में टीका की, आज माँग थी। इस प्रकार के कृति की जो पू० माता जी ने आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज की प्रेरणा से तथा ज्ञानदिवाकर आचार्यश्री भरतसागर जी महाराज के मार्गदर्शन में तैयार की।

साहित्य समाज का दर्पण है, व्यक्ति गतिशील है तथा नयी-नयी खोज में विश्वास करता है।

द्रव्य संग्रह नामक ग्रन्थ में जीवादि छह द्रव्यों का वर्णन अत्यन्त स्पष्टता से किया गया है। वर्णन संक्षिप्त होने पर भी पूर्ण और गम्भीर है। इसमें तीन अधिकार और ५८ गाथाएँ हैं। आशा है सभी जिज्ञासु पाठकगण एवं विद्यार्थी वर्ग इसे प्रश्नोत्तर रूप में हृदयंगम करके छह द्रव्यों के स्वरूप को सरलता से समझने का प्रयास करेंगे।

जैनाचार्यों ने श्रावकों के लिये दान एवं पूजा—ये दो कर्त्तव्य मुख्य रूप से बताये हैं। जिसमें ज्ञान-दान का अपना विशेष महत्त्व है।

ब्र० धर्मचन्द शास्त्री
प्रतिष्ठाचार्य, ज्योतिषाचार्य

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अधिकार

मंगलाचरण	१
जीव सम्बन्धी नौ अधिकार	३
जीव का लक्षण	३
उपयोग के भेद	५
ज्ञानोपयोग के भेद	७
नयापेक्षा जीव का लक्षण	९
अमूर्तत्व अधिकार	१०
व्यवहारनय से जीव कर्मों का कर्ता है	१२
जीव व्यवहार से कर्मफल का भोक्ता है	१३
जीव स्वदेह प्रमाण है	१४
जीव की संसारी अवस्था	१५
चौदह जीव समास	१६
मार्गणा और गुणस्थान की अपेक्षा जीव के भेद	१८
जीव की सिद्धत्व और ऊर्ध्वगमनत्व अवस्था	२०
अजीव द्रव्यों के नाम और उनके मूर्तिक-अमूर्तिकपने का वर्णन	२१
पुद्गल-द्रव्य की पर्यायें	२३
धर्म-द्रव्य का स्वरूप	२६
अधर्म-द्रव्य का स्वरूप	२७
आकाश द्रव्य का स्वरूप व भेद	२८
लोकाकाश और अलोकाकाश का स्वरूप	२९
काल-द्रव्य का स्वरूप व उसके दो भेद	३०
निश्चय काल का स्वरूप	३१
छः द्रव्यों का उपसंहार और पांच अस्तिकायों का वर्णन	३२
अस्तिकाय का लक्षण	३३
द्रव्यों के प्रदेशों की संख्या	३४
उपचार से एक पुद्गल परमाणु भी बहुप्रदेशी है	३६
प्रदेश का लक्षण	३६

द्वितीय अधिकार

आस्रव आदि पदार्थों के कथन की प्रतिज्ञा	३८
भावास्रव व द्रव्यास्रव के लक्षण	३९
भावास्रव के नाम व भेद	४०

द्रव्यास्रव का स्वरूप व भेद ४२
भावबन्ध व द्रव्यबन्ध का लक्षण ४३
बन्ध के चार भेद व उनके कारण ४४
भावसंवर और द्रव्यसंवर का लक्षण ४५
भावसंवर के भेद ४८
निर्जरा का लक्षण व उसके भेद ५०
मोक्ष के भेद व लक्षण ५३
पुण्य और पाप का निरूपण ५४

तृतीय अधिकार

व्यवहार और निश्चय मोक्षमार्ग का लक्षण ५६
रत्नत्रय युक्त आत्मा ही मोक्ष का कारण क्यों ? ५६
सम्यक् दर्शन किसे कहते हैं ५७
सम्यक् ज्ञान का स्वरूप ५९
दर्शनोपयोग का स्वरूप ५९
दर्शन और ज्ञान की उत्पत्ति का नियम ६०
व्यवहार चारित्र का स्वरूप ६१
निश्चय चारित्र का स्वरूप ६२
मोक्ष के हेतुओं को पाने के लिए ध्यान की प्रेरणा ६३
ध्यान करने का उपाय ६३
ध्यान करने योग्य मन्त्र ६५
अरहन्त परमेष्ठी का स्वरूप ६८
सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप ७०
आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप ७१
उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप ७२
साधु परमेष्ठी का स्वरूप ७३
ध्येय, ध्याता, ध्यान का स्वरूप ७४
परम ध्यान का लक्षण ७५
ध्यान के उपाय ७५
ग्रन्थकार की प्रार्थना ७७

॥ श्री नेमिनाथाय नमः॥

श्रीमन्नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती विरचित

द्रव्य संग्रह

प्रथमोऽधिकारः

मंगलाचरण

जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं।
देविंदविंदवंदं वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥१॥

अन्वयार्थ—

(जेण) जिन। (जिणवरवसहेण) जिनवर वृषभ ने। (जीवमजीवं) जीव और अजीव। (दव्वं) द्रव्य। (णिद्दिट्ठं) कहे हैं। (देविंदविंदवंदं) देवों के समूह से वन्दनीय। (तं) उनको। (जिनवर वृषभ को) (सव्वदा) हमेशा। (सिरसा) मस्तक नवाकर। (वंदे) नमस्कार करता हूँ।

अर्थ—

जिन वृषभनाथ भगवान ने जीव और अजीव द्रव्यों का निरूपण किया था उनको मैं (नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव) सदा मस्तक झुका कर नमस्कार करता हूँ।

प्र०—मंगलाचरण में किसे नमस्कार किया है ?

उ०—वृषभदेव को या समस्त तीर्थंकरों को, समस्त आप्तों को।

प्र०—वृषभदेव कौन थे ?

उ०—इस युग के प्रथम तीर्थंकर थे।

प्र०—जिनवर किसे कहते हैं ?

उ०—जिन कहते हैं अर्हन्त देव, केवली भगवान को तथा तीर्थंकर केवली को जिनवर कहते हैं।

प्र०—द्रव्य कितने हैं ?

उ०—द्रव्य दो हैं—१-जीव द्रव्य, २-अजीव द्रव्य।

प्र०—जीव किसे कहते हैं ?

उ०—(क) जिसमें चेतना गुण पाया जाता है उसे जीव कहते हैं जैसे—मनुष्य, पशु-पक्षी, देवनारकी आदि। अथवा

(ख) जिसमें सुख, सत्ता, चैतन्य और बोध हो, उसे जीव कहते हैं।

प्र०—अजीव किसे कहते हैं ?

उ०—जिसमें ज्ञान-दर्शन चेतना नहीं हो वह अजीव है। अजीव के पाँच भेद हैं—(१) पुद्गल, (२) धर्मद्रव्य, (३) अधर्मद्रव्य, (४) आकाश-द्रव्य और (५) कालद्रव्य।

प्र०—तीर्थंकर कितने इन्द्रों से वन्दनीय हैं ?

उ०—तीर्थंकर सौ इन्द्रों से वन्दनीय हैं।

प्र०—सौ इन्द्र कौन से हैं ?

भवणालय चालीसा, विंतरदेवाण होंति बत्तीसा।
कप्पामर चउवीसा, चन्दो सूरो णरो तिरिओ॥

भवनवासियों के ४० इन्द्र, व्यन्तरों के ३२, कल्पवासियों के २४, ज्योतिषियों के २—चन्द्र और सूर्य, मनुष्यों का १—चक्रवर्ती तथा पशुओं का १—सिंह। कुल १०० (४०+३२+२४+२+१+१)।

प्र०—इस ग्रन्थ में कितने अधिकार हैं ?

उ०—इस ग्रन्थ में तीन अधिकार हैं—१–जीव-अजीव अधिकार। २–आस्रव आदि तत्त्व वर्णन अधिकार। ३–मोक्षमार्ग प्रतिपादक अधिकार।

प्र०—प्रथम अधिकार में गाथाएँ कितनी हैं ?

उ०—प्रथम अधिकार में २७ गाथाएँ हैं।

प्र०—प्रथम अधिकार में वर्णित विषय बताइये।

उ०—प्रथम अधिकार में एक गाथा मंगलाचरण रूप है। गाथा २ से १४ तक जीव द्रव्य का व्यवहार और निश्चय दोनों नयों से विवेचन है। गाथा १५ से २७ तक अजीव द्रव्यों का विवेचन है। इनमें भी गाथा नं० १५ में अजीव द्रव्य के भेद, १६ में पुद्गल द्रव्य, १७ में धर्मद्रव्य, १८ में अधर्म द्रव्य, गाथा १९-२० में आकाश द्रव्य, २१-२२ में काल द्रव्य, २३-२५ तक अस्तिकायों का वर्णन, २६ में पुद्गल परमाणु का बहुप्रदेशीपना उपचार से तथा २७वीं गाथा में प्रदेश का लक्षण है।

जीवाधिकार

जीव सम्बन्धी नौ अधिकार

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो ।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥ २ ॥

अन्वयार्थ—

(सो) वह (जीव) (जीवो) जीने वाला । (उवओगमओ) उपयोगमयी । (अमुत्ति) अमूर्तिक । (कत्ता) कर्ता । (सदेहपरिमाणो) शरीरप्रमाण । (भोत्ता) कर्मों के फल का भोक्ता । (संसारत्थो) संसार में स्थित । (सिद्धो) सिद्ध । (विस्ससा) स्वभाव से । (उड्ढगई) ऊर्ध्वगमन करने वाला है ।

अर्थ—

वह जीव प्राणों से युक्त है । जानने-देखने वाला होने से उपयोगमयी अमूर्तिक-कर्ता, शरीर प्रमाण, भोक्ता, संसारी, सिद्ध और स्वभाव से ऊर्ध्वगमन स्वभाव वाला है ।

प्र०—जीव का वर्णन कितने अधिकारों में किया गया है ?

उ०—जीव का वर्णन नौ अधिकारों में किया गया है ।

प्र०—जीव के नौ अधिकारों के नाम बताइये ?

उ०—१–जीवत्व अधिकार, २–उपयोग अधिकार, ३–अमूर्तिक अधिकार, ४–कर्तृत्व अधिकार, ५–स्वदेहपरिमाण अधिकार, ६–भोक्तृत्व अधिकार, ७–संसारित्व अधिकार, ८–सिद्धत्व अधिकार, ९–ऊर्ध्वगमन अधिकार ।

जीव का लक्षण

तिक्काले चदुपाणा इन्दियबलमाउ आणपाणो य ।
ववहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स ॥ ३ ॥

अन्वयार्थ—

(ववहारा) व्यवहार नय से । (जस्स) जिसके । (तिक्काले) तीनों कालों में । (इन्दियबलमाउ) इन्द्रिय, बल, आयु । (आणपाणो य)

और श्वासोच्छ्वास। (चदुपाणा) चार प्राण। (सन्ति) हैं। (दु) और। (णिच्चयणयदो) निश्चय से। (जस्स) जिसके। (चेदणा) चेतना। (है) (सो) वह। (जीवो) जीव है।

अर्थ—

व्यवहारनय से जिसके तीनों कालों में इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास—ये चार प्राण हैं और निश्चयनय से जिसके चेतना है वह जीव है।

प्र०—व्यवहारनय किसे कहते हैं ?

उ०—वस्तु के अशुद्ध स्वरूप को ग्रहण करने वाले ज्ञान को व्यवहार-नय कहते हैं। जैसे—मिट्टी के घड़े को घी का घड़ा कहना।

प्र०—तीन काल कौन से हैं ?

उ०—१-भूतकाल, २-वर्तमान काल, ३-भविष्यकाल।

प्र०—मूल प्राण कितने हैं व उनके उत्तर-भेद कौन-कौन से हैं ?

उ०—मूल प्राण चार हैं—इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास। इनके उत्तर भेद १० हैं। पाँच इन्द्रियाँ—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण। तीन बल—मनबल, वचनबल और कायबल। आयु और श्वासोच्छ्वास।

प्र—व्यवहारनय से जीव का लक्षण बताइये।

उ०—जिसमें तीनों कालों में चार प्राण पाये जाते हैं, व्यवहारनय से वह जीव है।

प्र०—निश्चयनय से जीव का लक्षण बताइये।

उ०—जिसमें चेतना पायी जाती है, निश्चयनय से वह जीव है।

प्र०—निश्चयनय किसे कहते हैं ?

उ०—वस्तु के शुद्ध स्वरूप को ग्रहण करने वाले ज्ञान को निश्चयनय कहते हैं, जैसे—मिट्टी के घड़े को मिट्टी का घड़ा कहना।

प्र०—एकेन्द्रिय जीव के कितने प्राण हैं ?

उ०—एकेन्द्रिय जीव के चार प्राण होते हैं—स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल, आयु और श्वासोच्छ्वास।

प्र०—द्वीन्द्रिय जीव के कितने प्राण हैं ?

उ०—१-स्पर्शन इन्द्रिय, २-रसना इन्द्रिय, ३-वचनबल, ४-कायबल, ५-आयु, ६-श्वासोच्छ्वास। कुल ६ प्राण होते हैं।

प्र०–तीन इन्द्रिय जीव के कितने प्राण हैं ?

उ०–तीन इन्द्रिय जीव के सात प्राण होते हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, वचनबल, कायबल, आयु और स्वासोच्छ्‌वास।

प्र०–चार इन्द्रिय जीव के कितने प्राण होते हैं ?

उ०–स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, वचनबल, कायबल, आयु और स्वासोच्छ्‌वास। कुल ८ प्राण चार इन्द्रिय जीव के होते हैं।

प्र०–असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के कितने प्राण होते हैं ?

उ०–स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण, वचनबल, कायबल, आयु और स्वासोच्छ्‌वास। कुल ९ प्राण असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के होते हैं।

प्र०–संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के कितने प्राण होते हैं ?

उ०–दस प्राण होते हैं—पाँच इन्द्रिय, तीन बल, आयु और स्वासोच्छ्‌वास।

प्र०–आप (विद्यार्थियों) के कितने प्राण हैं ? क्यों ?

उ०–हमारे १० प्राण हैं। क्योंकि हम पञ्चेन्द्रिय सैनी हैं।

प्र०–अरहंत भगवान के कितने प्राण होते हैं ?

उ०–अरहंत भगवान के चार प्राण होते हैं—वचनबल, कायबल, आयु और स्वासोच्छ्‌वास।

प्र०–सिद्ध भगवान के कितने प्राण होते हैं ?

उ०–सिद्ध भगवान के दस प्राणों में से कोई भी प्राण नहीं है। उनको मात्र एक चेतना प्राण है।

उपयोग के भेद

उवओगो दुवियप्पो दंसण णाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु अचक्खू ओही दंसणमध केवलं णेयं ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—

(उवओगो) उपयोग। (दुवियप्पो) दो प्रकार (का है)। (दंसण) दर्शन। (णाणं च) और ज्ञान। (दंसण) दर्शन। (चदुधा) चार प्रकार का है। (चक्खु) चक्षुदर्शन। (अचक्खू) अचक्षुदर्शन। (ओही) अवधि-दर्शन। (अध) और। (केवलं दंसणं) केवलदर्शन। (णेयं) जानना चाहिए।

अर्थ—

उपयोग दो प्रकार का है—१–दर्शनोपयोग, २–ज्ञानोपयोग। उनमें दर्शनोपयोग चार प्रकार का होता है—१–चक्षुदर्शनोपयोग, २–अचक्षुदर्शनोपयोग, ३–अवधिदर्शनोपयोग और ४–केवलदर्शनोपयोग।

प्र०—उपयोग किसे कहते हैं ?

उ०—चैतन्यानुविधायी आत्मा के परिणाम को उपयोग कहते हैं।

प्र०—उपयोग का शाब्दिक अर्थ क्या है ?

उ०—उप याने समीप या निकट। योग का अर्थ है सम्बन्ध। जिसका आत्मा से निकट सम्बन्ध है उसे उपयोग कहते हैं। ज्ञानदर्शन का आत्मा से निकट सम्बन्ध है। अतः इन दोनों को उपयोग कहते हैं।

प्र०—दर्शनोपयोग किसे कहते हैं ?

उ०—जो वस्तु के सामान्य अंश को ग्रहण करे उसे दर्शनोपयोग कहते हैं।

प्र०—ज्ञानोपयोग किसे कहते हैं ?

उ०—जो वस्तु के विशेष अंश को ग्रहण करे उसे ज्ञानोपयोग कहते हैं।

प्र०—चक्षुदर्शनोपयोग किसे कहते हैं ?

उ०—इन्द्रिय से उत्पन्न होने वाले ज्ञान के पहले जो वस्तु का सामान्य प्रतिभास होता है, उसे चक्षुदर्शनोपयोग कहते हैं।

प्र०—अचक्षुदर्शनोपयोग किसे कहते हैं ?

उ०—चक्षु इन्द्रिय को छोड़कर शेष स्पर्शन, रसना, घ्राण और कर्ण तथा मन से होने वाले ज्ञान के पहले जो वस्तु का सामान्य आभास होता है उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं।

प्र०—अवधिदर्शन किसे कहते हैं।

उ०—अवधिज्ञान के पहले जो वस्तु का सामान्य आभास होता है उसे अवधिदर्शन कहते हैं।

प्र०—केवलदर्शन किसे कहते हैं ?

उ०—केवलज्ञान के साथ होने वाले वस्तु के सामान्य आभास को केवलदर्शन कहते हैं।

ज्ञानोपयोग के भेद

णाणं अट्ठवियप्पं मदिसुदओही अणाणणाणाणि ।
मणपज्जयकेवलमवि पच्चक्खपरोक्खभेयं च ।। ५ ।।

अन्वयार्थ—

(णाणं) ज्ञान । (अट्ठवियप्पं) आठ प्रकार का है । (अणाण-णाणाणि) अज्ञान रूप और ज्ञान रूप । (मदिसुदओही) मतिज्ञान, श्रुत-ज्ञान, अवधिज्ञान । (मणपज्जय) मनःपर्ययज्ञान । (केवलं) केवलज्ञान । (अवि) और । (वही ज्ञानोपयोग) (पच्चक्खपरोक्खभेयं च) प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से दो प्रकार का है ।

अर्थ—

ज्ञानोपयोग अज्ञान और ज्ञान रूप से आठ प्रकार का है—१-कुमति-ज्ञान, २-कुश्रुतज्ञान, ३-कुअवधिज्ञान, ४-मतिज्ञान, ५-श्रुतज्ञान, ६-अवधिज्ञान, ७-मनःपर्ययज्ञान और ८-केवलज्ञान । और वही ज्ञानोपयोग प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से दो प्रकार का है ।

प्र०—कुज्ञान कितने हैं ?

उ०—कुज्ञान तीन हैं—१-कुमति, २-कुश्रुत, ३-कुअवधि ।

प्र०—सम्यक् ज्ञान कितने हैं ?

उ०—सम्यक् ज्ञान पाँच हैं—१-मतिज्ञान, २-श्रुतज्ञान, ३-अवधि-ज्ञान, ४-मनःपर्ययज्ञान, ५-केवलज्ञान ।

प्र०—मतिज्ञान किसे कहते हैं ?

उ०—पाँच इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाला ज्ञान मति-ज्ञान कहलाता है ।

प्र०—श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उ०—मतिज्ञान पूर्वक होने वाला ज्ञान श्रुतज्ञान कहलाता है ।

प्र०—अवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

उ०—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादापूर्वक जो रूपी पदार्थों को स्पष्ट जानता है वह अवधिज्ञान है ।

प्र०—मनःपर्ययज्ञान किसे कहते हैं ?

उ०—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादापूर्वक जो दूसरे के मन में तिष्ठते रूपी पदार्थों को स्पष्ट जानता है, उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं।

प्र०-केवलज्ञान किसे कहते हैं ?

उ०-त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्यों और उनकी समस्त पर्यायों को एक साथ जानने वाले ज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं।

प्र०—मति-श्रुति-अवधिज्ञान सच्चे और झूठे कैसे होते हैं ?

उ०—ये तीनों ज्ञान जब सम्यग्दृष्टि के होते हैं तब सत्य कहलाते हैं और जब मिथ्यादृष्टि के होते हैं तब मिथ्या या झूठे कहलाते हैं।

प्र०—प्रत्यक्षज्ञान किसे कहते हैं ?

उ०—इन्द्रिय आदि की सहायता के बिना सिर्फ आत्मा से होने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है।

प्र०—परोक्षज्ञान किसे कहते हैं ?

उ०—इन्द्रिय और आलोक आदि की सहायता से जो ज्ञान होता है उसे परोक्ष ज्ञान कहते हैं।

प्र०—एक व्यक्ति आँखों से रस्सी को प्रत्यक्ष देख रहा है, उसका ज्ञान प्रत्यक्ष है या परोक्ष ?

उ०—इन्द्रियों की सहायता से ज्ञान हो रहा है इसलिए परोक्ष है।

प्र०—एक सम्यग्दृष्टि माँ को माँ कहता है, भूल से माँ को बहन भी कहता है, उसका ज्ञान सम्यक् है या मिथ्या ?

उ०-सम्यक्दर्शन का आश्रय होने से सम्यग्दृष्टि का ज्ञान सम्यक्-ज्ञान है।

प्र०-एक मिथ्यादृष्टि साँप को साँप और रस्सी को रस्सी जानता है, उसका ज्ञान सम्यक् है या मिथ्या ?

उ०—मिथ्यादृष्टि का ज्ञान मिथ्या ही है।

प्र०-प्रत्यक्ष ज्ञान कौन-कौन से हैं ?

उ०-अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान—ये प्रत्यक्ष ज्ञान हैं। इनमें भी अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान विकलपारमार्थिक हैं और केवलज्ञान सकलपारमार्थिक प्रत्यक्ष है। अथवा अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान विकल प्रत्यक्ष है और केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है।

- उपयोग
  - ज्ञानोपयोग ८
    - परोक्ष
      1. मतिज्ञान
      2. श्रुतज्ञान
      3. कुमतिज्ञान
      4. कुश्रुतज्ञान
      5. अवधिज्ञान
      6. कुअवधि
      7. मनःपर्ययज्ञान
      8. केवलज्ञान
    - प्रत्यक्ष
      - विकल
      - सकल
  - दर्शनोपयोग ४
    1. चक्षुदर्शन
    2. अचक्षुदर्शन
    3. अवधिदर्शन
    4. केवलदर्शन

नयापेक्षा जीव का लक्षण

अट्ठचदुणाणदंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं ।
ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ—

(ववहारा) व्यवहारनय से । (अट्ठचदुणाणदंसणं) आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का दर्शन । (सामण्णं) सामान्य से । (जीवलक्खणं) जीव का लक्षण । (भणियं) कहा गया है । (पुण) और । (सुद्धणया) शुद्ध निश्चयनय से । (सुद्धं) शुद्ध । (दंसणं) दर्शन । (णाणं) ज्ञान । (जीवलक्खणं भणियं) जीव का लक्षण कहा गया है ।

अर्थ—

व्यवहारनय से आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का दर्शन सामान्य से जीव का लक्षण कहा गया है और शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध दर्शन और ज्ञान जीव का लक्षण कहा गया है ।

प्र०—व्यवहार से (सामान्य) जीव का लक्षण क्या है ?

उ०—व्यवहारनय से आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का दर्शन जीव का लक्षण है।

प्र०—शुद्ध निश्चयनय से जीव किसे कहते हैं ?

उ०—जिसमें शुद्ध दर्शन और ज्ञान पाया जाता है, शुद्ध निश्चयनय से वह जीव है।

प्र०—शुद्ध निश्चयनय किसे कहते हैं ?

उ०—पर सम्बन्ध से रहित वस्तु के गुणों के कथन करने वाले ज्ञान को शुद्ध निश्चयनय कहते हैं।

अमूर्तत्व अधिकार

वण्णरसपंच गंधा दो फासा अट्ठ णिच्चया जीवे।
णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बंधादो ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ—

(णिच्चया) निश्चयनय से। (जीवे) जीव में। (पंच वण्ण) पाँच वर्ण। (पंच रस) पाँच रस। (दो गंधा) दो गंध। (अट्ठ फासा) और आठ स्पर्श। (णो) नहीं। (सन्ति) हैं। (तदो) इसलिए (सो) वह। (अमुत्ति) अमूर्तिक है। (ववहारा) व्यवहारनय से। (बंधादो) कर्मबन्ध की अपेक्षा। (मुत्ति) मूर्तिक। (अत्थि) है।

अर्थ—

निश्चयनय से जीव में पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श नहीं हैं। इसलिए वह अमूर्तिक है। व्यवहारनय से कर्मबन्ध की अपेक्षा जीव मूर्तिक है।

प्र०—मूर्तिक किसे कहते हैं ?

उ०—जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण पाया जाया है उसे मूर्तिक कहते हैं।

प्र०—अमूर्तिक किसे कहते हैं ?

उ०—जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण नहीं पाये जाते हैं उसे अमूर्तिक कहते हैं।

प्र०—जीव मूर्तिक है या अमूर्तिक ?

उ०—जीव मूर्तिक भी है और अमूर्तिक भी है।

प्र०—जीव अमूर्तिक किस अपेक्षा से है ? और क्यों है ?

उ०—निश्चयनय से जीव अमूर्तिक है, क्योंकि उसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण नहीं पाये जाते हैं।

प्र०—जीव मूर्तिक किस अपेक्षा से है ?

उ०—संसारी जीव व्यवहारनय से मूर्तिक है। क्योंकि यह अनादिकाल से कर्मों से बंधा हुआ है। कर्म पुद्गल है और पुद्गल मूर्तिक है। मूर्तिक के साथ रहने से अमूर्तिक आत्मा भी मूर्तिक कहा जाता है।

प्र०—यदि आत्मा अमूर्तिक है तो मूर्तिक कैसे हो सकता है ? और यदि मूर्तिक है तो अमूर्तिक कैसे ?

उ०—एक ही राम, पिता भी थे और पुत्र भी थे। अपेक्षाकृत कथन है। पिता दशरथ की अपेक्षा राम पुत्र थे और पुत्रों लव-कुश की अपेक्षा पिता भी। इसमें कोई विरोध नहीं प्रतीत होता है। इसी प्रकार आत्मा के शुद्ध स्वरूप का विचार करने पर वह अमूर्तिक है और कर्म पुद्गलमय अशुद्ध स्वरूप की अपेक्षा मूर्तिक है, इसमें कोई विरोध नहीं है।

प्र०—स्पर्श किसे कहते हैं ? उसके कितने भेद हैं ?

उ०—छूने पर जो पदार्थ का ज्ञान होता है उसे स्पर्श कहते हैं। वह आठ प्रकार का होता है—ठण्डा, गरम, रूखा, चिकना, मुलायम, कठोर, हलका और भारी।

प्र०—रस किसे कहते हैं ? भेद सहित बताइये।

उ०—रस स्वाद को कहते हैं और उसके पाँच भेद हैं—खट्टा, मीठा, कड़ुआ, चरपरा और कषायला।

प्र०—गन्ध किसे कहते हैं ? भेद सहित बताइये।

उ०—गन्ध महक को कहते हैं वह दो प्रकार की होता है—सुगन्ध और दुर्गन्ध।

प्र०—वर्ण किसे कहते हैं तथा इसके कितने भेद हैं ?

उ०—वर्ण रंग को कहते हैं। रंग पाँच प्रकार के होते हैं—काला, पीला, नीला, लाल और सफेद।

प्र०—उदाहरण देकर समझाइये कि आत्मा अमूर्तिक क्यों है तथा पुद्गल मूर्तिक क्यों है ?

उ०—आत्मा को कोई छू नहीं सकता, कोई उसका स्वाद नहीं ले सकता, उसका कोई वर्ण नहीं तथा न उसमें खुशबू है, न बदबू किन्तु पुद्गल में ये सब पाये जाते हैं। जैसे आम पुद्गल है। इसे हम देख भी सकते हैं, छू भी सकते हैं, यह कड़ा है या नरम। इसकी गन्ध भी ले सकते हैं तथा इसका खट्टा-मीठा स्वाद भी ले सकते हैं। इन्हीं कारणों से आत्मा का अमूर्तिकपना और पुद्गल का मूर्तिकपना सिद्ध है।

प्र०—आत्मा इन्द्रियों की सहायता से नहीं जाना जाता है तो वह है, यह कैसे निर्णय करें ?

उ०—यद्यपि मूर्तिक इन्द्रियों की सहायता से अमूर्तिक आत्मा नहीं जाना जाता है फिर 'अहं' (मैं) शब्द से आत्मा की प्रतीति होती है। मैं सुखी, मैं दुखी, मैं निर्धन, मैं धनवान आदि। लड्डू खाने पर मीठा, नीम खाने पर कड़वा लगता है। लड्डू खाने पर सुख और कांटा चुभ जाने पर दुख होता है। यह सुख-दुख का वेदन जिसमें होता है वह आत्मा है। यह स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से जाना जाता है। दूसरों के शरीर में आत्मा का ज्ञान अनुमान से जाना जाता है। अन्यथा जिन्दा व्यक्ति और मुर्दा व्यक्ति का निर्णय नहीं हो पायेगा।

प्र०—आपका आत्मा मूर्तिक है या अमूर्तिक है, क्यों ?

उ०—हमारा आत्मा मूर्तिक है क्योंकि हम अभी कर्म से बद्ध संसारी जीव हैं।

प्र०—सिद्ध भगवान का आत्मा कैसा है ?

उ०—सिद्ध भगवान अमूर्तिक हैं क्योंकि पुद्गल-कर्मबन्ध से सर्वथा रहित (छूट गये) हैं।

व्यवहारनय से जीव कर्मों का कर्ता है

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्चयदो।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ—

(आदा) आत्मा। (ववहारदो) व्यवहारनय से। (पुग्गलकम्मा-

दोणं) ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्मों का। (कत्ता) कर्ता है। (णिच्चयदो) अशुद्ध निश्चयनय से। (चेदणकम्माणं) रागादिक भाव कर्मों का (कत्ता) (कर्ता) है। (दु) और। (सुद्धणया) शुद्ध निश्चयनय से। (सुद्धभावाणं) शुद्ध भावों का (कत्ता) कर्ता है।

अर्थ—

आत्मा व्यवहारनय से ज्ञानावरणादि कर्मों का कर्ता है। अशुद्ध निश्चयनय से रागादि भावकर्मों का कर्ता है तथा शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध भावों का कर्ता है।

प्र०—पुद्गल कर्म कौन-कौन से हैं ?

उ०—ज्ञानावरण, दर्शनावरणादि आठ द्रव्य कर्म और छः पर्याप्ति और तीन शरीर—ये नौ नोकर्म पुद्गल कर्म हैं।

प्र०—भाव कर्म कौन से हैं ?

उ०—राग, द्वेष, मोह आदि भाव कर्म हैं।

प्र०—जीव के शुद्ध भाव कौन से हैं ?

उ०—केवलज्ञान और केवलदर्शन जीव के शुद्धभाव हैं।

प्र०—क्या जीव कर्ता है ?

उ०—हाँ, व्यवहारनय से जीव कर्मों का कर्ता है।

जीव व्यवहार से कर्मफल का भोक्ता है

ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि।
आदा णिच्चयणयदो चेदणभावं खु आदस्स ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ—

(आदा) आत्मा। (ववहारा) व्यवहारनय से। (सुहदुक्खं) सुख-दुःखस्वरूप। (पुग्गलकम्मफलं) पौद्गलिक कर्मों के फल को। (पभुंजेदि) भोगता है। (णिच्चयणयदो) निश्चयनय से। (आदस्स) अपने। (चेदणभावं) ज्ञान दर्शनरूप शुद्ध भावों को। (खु) नियम से। (पभुंजेदि) भोगता है।

अर्थ—

आत्मा व्यवहारनय से सुख-दुःख रूप पुद्गल कर्मों के फल को भोगता है और निश्चयनय से वह शुद्ध ज्ञान दर्शन का ही भोक्ता है।

प्र०—सुख किसे कहते हैं ?

उ०—आह्लाद रूप आत्मा की परिणति को सुख कहते हैं।

प्र०—दुःख किसे कहते हैं ?

उ०—खेद रूप आत्मपरिणति को दुःख कहते हैं।

प्र०—आत्मा सुख-दुःख का भोगने वाला किस अपेक्षा से है ?

उ०—व्यवहारनयापेक्षा।

प्र०—शुद्ध ज्ञान और शुद्ध दर्शन कौन से हैं ?

उ०—केवलज्ञान और केवलदर्शन शुद्ध ज्ञान-दर्शन हैं।

प्र०—शुद्ध ज्ञान दर्शन किस जीव के पाया जाता है ?

उ०—अरहन्त-केवली व सिद्धों में शुद्ध ज्ञान-दर्शन पाया जाता है।

प्र०—आत्मा शुद्ध ज्ञान दर्शन का भोगने वाला किस नय अपेक्षा से है ?

उ०—निश्चयनय की अपेक्षा से।

जीव स्वदेह प्रमाण है

अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा णिच्चयणयदो असंखदेसो वा ॥१०॥

अन्वयार्थ—

(चेदा) आत्मा। (ववहारा) व्यवहारनय से। (असमुहदो) समुद्घात को छोड़कर अन्य अवस्थाओं में। (उवसंहारप्पसप्पदो) संकोच और विस्तार के कारण। (अणुगुरुदेहपमाणो) छोटे-बड़े शरीर के बराबर प्रमाण को धारण करने वाला है। (वा) और। (णिच्चय-णयदो) निश्चयनय से। (असंखदेसो) असंख्यातप्रदेशी है।

अर्थ—

आत्मा व्यवहारनय से समुद्घात को छोड़कर अन्य अवस्थाओं में संकोच-विस्तार के कारण छोटे-बड़े शरीर के बराबर प्रमाण को धारण करने वाला है और निश्चयनय से असंख्यातप्रदेशी है।

प्र०—जीव छोटे-बड़े शरीर के बराबर प्रमाण को धारण करने वाला कैसे है ?

उ०—जीव में संकोच-विस्तार गुण स्वभाव से पाया जाता है। इसलिए वह अपने द्वारा कर्मोदय से प्राप्त शरीर के आकार प्रमाण को धारण करता है व्यवहारनय की अपेक्षा से।

प्र०—उदाहरण देकर समझाइये।

उ०—जिस प्रकार एक दीपक को यदि छोटे कमरे में रखा जाय तो वह उसे प्रकाशित करेगा और यदि वही दीपक किसी बड़े कमरे में रख दिया जाय तो वह उसे प्रकाशित करेगा। ठीक उसी प्रकार एक जीव जब चींटी का जन्म लेता है तो वह उसके शरीर में समा जाता है और जब वही जीव हाथी का जन्म लेता है तो उसके शरीर में समा जाता है। स्पष्ट है कि जीव छोटे शरीर में पहुँचने पर उसके बराबर और बड़े शरीर में पहुँचने पर उस बड़े शरीर के बराबर हो जाता है। इसी दृष्टि से जीव को व्यवहारनय से अणुगुरु-देह प्रमाण वाला बतलाया है। समुद्घात में ऐसा नहीं होता है।

प्र०—समुद्घात के समय ऐसा क्यों नहीं होता ?

उ०—कारण कि समुद्घात के समय जीव शरीर के बाहर फैल जाता है।

प्र०—जीव असंख्यात प्रदेशी किस नय की अपेक्षा से है ?

उ०—जीव निश्चयनय की अपेक्षा से असंख्यातप्रदेशी है।

प्र०—समुद्घात किसे कहते हैं ?

उ०—मूल शरीर से सम्बन्ध छोड़े बिना आत्मप्रदेशों का तैजस व कार्मण शरीर के साथ बाहर फैल जाना समुद्घात कहलाता है।

प्र०—समुद्घात कितने प्रकार का होता है ?

उ०—समुद्घात सात प्रकार का होता है—१-वेदना समुद्घात, २-कषायसमुद्घात, ३-विक्रिया-समुद्घात, ४-मारणांतिक समुद्घात, ५-तैजस समुद्घात, ६-आहारक समुद्घात और ७-केवली समुद्घात।

जीव की संसारी अवस्था

पुढविजलतेउवाऊ वणप्फदी विविहथावरेइंदी।
विगतिगचदुपंचक्खा तसजीवा होंति संखादी ॥११॥

अन्वयार्थ—

(पुढविजलतेउवाऊवणप्फदी) पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक (विविहथावरेइंदी) अनेक प्रकार के स्थावर एकेन्द्रिय जीव हैं। (संखादो) शंख आदि। (विगतिगचदुपंचक्खा) दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव। (तसजीवा) त्रस जीव। (होंति) होते हैं।

अर्थ—

पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक—ये स्थावर जीव हैं तथा शंखादि दो, तीन, चार और पाँच इन्द्रिय जीव त्रस कहलाते हैं।

प्र०—संसारी जीवों के कितने भेद हैं ?

उ०—संसारी जीवों के २ भेद हैं—१-स्थावर, २-त्रस।

प्र०—स्थावर कौन जीव है ?

उ०—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिक जीव स्थावर हैं।

प्र०—त्रस जीव कौन से हैं ?

उ०—दो इन्द्रिय से पाँच इन्द्रिय तक के जीव त्रस हैं।

प्र०—शंख, चींटी, मक्खी, मनुष्य आदि कितने इन्द्रिय जीव हैं ?

उ०—शंख—दो इन्द्रिय जीव। चींटी—तीन इन्द्रिय जीव। मक्खी—चार इन्द्रिय जीव। मनुष्य, नारकी, देव, हाथी, घोड़ा आदि पंचेन्द्रिय जीव हैं।

प्र०—जीव स्थावर या त्रस जीवों में किस कर्म के उदय से पैदा होता है ?

उ०—स्थावर नाम कर्म के उदय से जीव स्थावर जीवों में उत्पन्न होता है तथा त्रस नाम कर्म के उदय से त्रस जीवों में उत्पन्न होता है।

चौदह जीवसमास

समणा अमणा णेया पंचिंदिय णिम्मणा परे सव्वे।
बादरसुहुमेइंदी सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥१२॥

अन्वयार्थ—

(पंचिंदिय) पंचेन्द्रिय जीव। (समणा) संज्ञी। (अमणा)

असंज्ञी। (णेया) जानना चाहिए। (परे) शेष। (सव्वे) सब। (णिम्मणा) असंज्ञी। (णेया) जानना चाहिए। (एइंदी) एकेन्द्रिय जीव। (बादर सुहुमा) बादर और सूक्ष्म होते हैं। (सव्वे) ये सब जीव। (पज्जत्त) पर्याप्तक। (इदरा य) और अपर्याप्तक होते हैं।

अर्थ—

पञ्चेन्द्रिय जीव संज्ञी और असंज्ञी के भेद से दो प्रकार के होते हैं। शेष एकेन्द्रिय विकलत्रय असंज्ञी होते हैं। एकेन्द्रिय जीवों में कुछ बादर और कुछ सूक्ष्म होते हैं। और सभी जीव पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

प्र०—मनसहित एवं मनरहित जीव कौन से हैं ?

उ०—पञ्चेन्द्रिय जीव मनरहित भी होते हैं। व मनसहित भी होते हैं किन्तु एकेन्द्रिय और विकलत्रय जीव मनरहित ही होते हैं।

प्र०—बादर जीव किन्हें कहते हैं ?

उ०—जो स्वयं भी दूसरों से रुकते हैं और दूसरों को भी रोकते हैं अथवा जो आपस में टकरा सकें उनको बादर जीव कहते हैं।

प्र०—सूक्ष्म जीव किन्हें कहते हैं ?

उ०—जो दूसरों को नहीं रोकते हैं तथा दूसरों से रुकते भी नहीं हैं अथवा जो किसी से टकरा न सकें उन्हें सूक्ष्म जीव कहते हैं।

प्र०—पर्याप्तक जीव किन्हें कहते हैं ?

उ०—जिन जीवों की आहारादि पर्याप्तियाँ पूर्ण हो जायें उन्हें पर्याप्तक जीव कहते हैं।

प्र०—अपर्याप्तक जीव किन्हें कहते हैं ?

उ०—जिन जीवों की आहार आदि पर्याप्तियाँ पूर्ण नहीं होती हैं उन्हें अपर्याप्तक जीव कहते हैं।

प्र०—पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उ०—गृहीत आहारवर्गणा को खल-रस भाग आदि रूप परिणमाने की जीव की शक्ति के पूर्ण हो जाने को पर्याप्ति कहते हैं।

प्र०—पर्याप्तियों के भेद बताइये।

उ०—पर्याप्ति के ६ भेद हैं—१—आहार, २—शरीर, ३—इन्द्रिय ४—श्वासोच्छ्वास, ५—भाषा और ६—मन।

प्र०–पर्याप्तियों के स्वामी बताइये। (किस जीव के कितनी पर्याप्तियाँ हैं ?)

उ०–एकेन्द्रिय जीव के ४ पर्याप्तियाँ—आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास होती हैं। विकलत्रय जीव व असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के मन पर्याप्ति को छोड़कर पाँच होती हैं तथा सैनी पञ्चेन्द्रिय जीव के छहों पर्याप्तियाँ होती हैं।

प्र०–जीवसमास का लक्षण बताइये।

उ०–जिनके द्वारा अनेक जीव तथा उनकी अनेक प्रकार की जाति जानी जाय उन धर्मों को अनेक पदार्थों का संग्रह करने वाले होने से जीवसमास कहते हैं।

प्र०–चौदह जीवसमास बताइये।

उ०–एकेन्द्रिय सूक्ष्म, बादर	= २
दो इन्द्रिय	= १
तीन इन्द्रिय	= १
चार इन्द्रिय	= १
पञ्चेन्द्रिय असैनी	= १
पञ्चेन्द्रिय सैनी	= १ = ७

ये सात प्रकार के जीव पर्याप्त भी होते हैं। अपर्याप्त भी होते हैं अतः ७ × २ = १४ जीवसमास।

प्र०–सिद्ध भगवान के कितने जीवसमास हैं ?

उ०–सिद्ध भगवान जीवसमास से रहित हैं।

मार्गणा व गुणस्थान अपेक्षा जीव के भेद

मग्गणगुणठाणेहिं य चउदसहिं हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥१३॥

अन्वयार्थ—

(तह) तथा। (संसारी) सभी संसारी जीव। (असुद्धणया) व्यवहारनय से। (चउदसहिं) चौदह। (मग्गणगुणठाणेहिं) मार्गणा और गुणस्थान अपेक्षा चौदह प्रकार के। (हवंति) होते हैं। (यह) और। (सुद्धणया) शुद्धनिश्चयनय की दृष्टि से। (सव्वे) सभी जीव। (हु) नियम से। (सुद्धा) शुद्ध। (विण्णेया) जानने चाहिए।

संसारी जीव व्यवहारनय से चौदह मार्गणा और चौदह गुणस्थानों की अपेक्षा चौदह-चौदह प्रकार के होते हैं किन्तु शुद्ध निश्चयनय की दृष्टि से सभी संसारी जीव शुद्ध हैं। उनमें कोई भेद नहीं है।

प्र०–जीव चौदह प्रकार के किस अपेक्षा से हैं ?

उ०–व्यवहारनय से जीव चौदह मार्गणा, चौदह गुणस्थान वाले होने से चौदह प्रकार के होते हैं।

प्र०–जीव शुद्ध किस अपेक्षा से है ?

उ०–शुद्ध निश्चयनय की दृष्टि से।

प्र०–जीव के चौदह भेद मार्गणा अपेक्षा बताइये। (चौदह-मार्गणाएँ)

उ०–मार्गणाएँ चौदह होती हैं अतः उस सम्बन्ध से जीव के भी चौदह भेद हो गये—१–गति मार्गणा, २–इन्द्रिय मार्गणा, ३–कायमार्गणा, ४–योगमार्गणा, ५–वेदमार्गणा, ६–कषायमार्गणा, ७–ज्ञानमार्गणा, ८–संयम-मार्गणा, ९–दर्शनमार्गणा, १०–लेश्यामार्गणा, ११–भव्यत्वमार्गणा, १२–सम्यक्त्व मार्गणा, १३–संज्ञित्व मार्गणा और १४–आहार मार्गणा।

प्र०–मार्गणा किसे कहते हैं ?

उ०–जिनधर्म विशेषों से जीवों का अन्वेषण किया जाय उन्हें मार्गणा कहते हैं।

प्र०–गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उ०–मोह और योग के निमित्त से होने वाले आत्मा के गुणों (भावों की तारतम्यरूप अवस्थाविशेष) को गुणस्थान कहते हैं।

प्र०–गुणस्थान कितने होते हैं ?

उ०–चौदह गुणस्थान होते हैं—१–मिथ्यात्व, २–सासादन, ३–मिश्र, ४–अविरत, ५–देशविरत, ६–प्रमत्तविरत, ७–अप्रमत्तविरत, ८–अपूर्वकरण, ९–अनिवृत्तिकरण, १०–सूक्ष्मसाम्पराय, ११–उपशान्तमोह, १२–क्षीणमोह, १३–सयोगकेवली, १४–अयोगकेवली।

प्र०–शुद्धनय से संसारी जीव के कितने गुणस्थान और मार्गणा होती हैं तथा व्यवहारनय से कितने ?

उ०–शुद्ध निश्चयनय से संसारी जीव के गुणस्थान भी नहीं और मार्गणा भी नहीं होती हैं।

प्र०–सिद्ध भगवान के गुणस्थान और मार्गणाएँ बताइये।

उ०–सिद्ध भगवान गुणस्थान और मार्गणाओं से रहित-गुणस्थानातीत व मार्गणातीत हैं।

जीव की सिद्धत्व और ऊर्ध्वगमनत्व अवस्था

णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पादवएहिं संजुत्ता ॥१४॥

अन्वयार्थ—

(णिक्कम्मा) ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित। (अट्ठगुणा) सम्यक्त्व आदि आठ गुणों से सहित। (चरमदेहदो) अन्तिम शरीर से। (किंचूणा) प्रमाण में कुछ कम। (णिच्चा) नित्य। (उप्पादवएहिं) उत्पाद और व्यय से। (संजुत्ता) संयुक्त। (लोयग्गठिदा) लोक के अग्रभाग में स्थित। (सिद्धा) सिद्ध होते हैं।

अर्थ—

आठ कर्मों से रहित, आठ गुणों से सहित, प्रमाण में अन्तिम शरीर से कुछ कम उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य युक्त, लोक के अग्रभाग में अवस्थित होने वाले जीव सिद्ध कहलाते हैं।

प्र०—आठ कर्म कौन से हैं?

उ०—१—ज्ञानावरण, २—दर्शनावरण, ३—वेदनीय, ४—मोहनीय, ५—आयु, ६—नाम, ७—गोत्र और ८—अन्तराय।

प्र०—आठ गुण कौन से हैं?

उ०—१—अनन्तज्ञान, २—अनन्तदर्शन, ३—अनन्तसुख, ४—अनन्तवीर्य, ५—अव्याबाध, ६—अवगाहनत्व, ७—सूक्ष्मत्व और ८—अगुरुलघुत्व—ये सिद्धों के आठ गुण हैं।

प्र०—किस कर्म के नाश से कौन-सा गुण प्रकट होता है?

उ०—ज्ञानावरण कर्म के नाश से अनन्तज्ञान।
दर्शनावरण कर्म के नाश से अनन्तदर्शन।
मोहनीय कर्म के नाश से अनन्तसुख।
अन्तराय कर्म के नाश से अनन्तवीर्य।
वेदनीय कर्म के नाश से अव्याबाध।
आयु कर्म के नाश से अवगाहनत्व।
नाम कर्म के नाश से सूक्ष्मत्व।
और गोत्र कर्म के नाश होने से अगुरुलघुत्व गुण प्रकट होता है।

प्र०—जैसे उपयोगमत्व आदि सभी जीवों में पाया जाता है क्या उसी प्रकार सिद्धत्व और ऊर्ध्वगमन भी सभी जीवों में पाया जाता है ?

उ०—उपयोगमत्व आदि सभी जीवों का स्वभाव है परन्तु ऊर्ध्वगमन एवं सिद्धत्व जीव का स्वभाव होने पर भी ये व्यक्ति अपेक्षा नहीं शक्ति अपेक्षा हैं। क्योंकि जिन जीवों ने आठ कर्मों का क्षय कर दिया है वे ही सिद्धत्व अवस्था प्राप्त करते हैं। तथा वे ही ऊर्ध्वगमन करते हैं, शेष जीव नहीं।

प्र०—उत्पाद किसे कहते हैं ?

उ०—द्रव्य में नवीन पर्याय की उत्पत्ति को उत्पाद कहते हैं।

प्र०—व्यय किसे कहते हैं ?

उ०—द्रव्य में पूर्व पर्याय के नाश को व्यय कहते हैं।

प्र०—ध्रौव्य किसे कहते हैं ?

उ०—द्रव्य की नित्यता को ध्रौव्य कहते हैं।

प्र०—उदाहरण से समझाइए।

उ०—सिद्धजीवों में—संसारी पर्याय का नाश व्यय है। सिद्ध पर्याय की उत्पत्ति उत्पाद है जीव द्रव्य ध्रौव्य है।

पुद्गल में—स्वर्ण कुण्डल है। हमें चूड़ी चाहिए—स्वर्ण कुण्डल का नाश व्यय है। चूड़ी पर्याय की उत्पत्ति उत्पाद है एवं स्वर्ण ध्रौव्य है।

॥ इति जीवाधिकार समाप्त ॥

अजीवाऽधिकारः

अजीव द्रव्यों के नाम और उनके मूर्तिक अमूर्तिकपने का वर्णन

अज्जीवो पुण णेओ, पुग्गलधम्मो अधम्म आयासं।
कालो पुग्गलमुत्तो रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु ॥१५॥

अन्वयार्थ—

(पुण) और। (पुग्गल) पुद्गल। (धम्मो) धर्म। (अधम्म)

अधर्म। (आयासं) आकाश। (कालो) काल। (अज्जीवो) अजीव। (णेओ) जानना चाहिए। (रूवादिगुणो) रूप आदि गुणयुक्त। (पुग्गल) पुद्गल। (मुत्तो) मूर्तिक है। (सेसा दु) और शेष। (अमुत्ति) अमूर्तिक हैं।

अर्थ—

अजीव द्रव्य—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य—इन पाँच भेदरूप जानना चाहिए। उनमें रूपादि गुणयुक्त पुद्गल मूर्तिक है तथा धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश और काल अमूर्तिक हैं।

प्र०—मूर्तिक किसे कहते हैं ?

उ०—जिसमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्श—ये गुण पाये जायें उसे मूर्तिक कहते हैं।

प्र०—अमूर्तिक किसे कहते हैं ?

उ०—जिसमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्श—ये गुण नहीं पाये जायें उसे अमूर्तिक कहते हैं।

प्र०—जिसे देख सकें, छू सकें, सूंघ सकें और चख सकें वह मूर्तिक है या अमूर्तिक ?

उ०—वह मूर्तिक कहा जायेगा।

प्र०—परमाणु को हम देख नहीं सकते, छू नहीं सकते, सूंघ नहीं सकते, चख नहीं सकते, उसे मूर्तिक कैसे कहा जा सकता है ?

उ०—अनेक परमाणु मिलकर जो स्कन्ध बनते हैं उन्हें हम देख सकते हैं, छू सकते हैं, सूंघ सकते हैं तथा चख भी सकते हैं। यदि परमाणुओं में रूपादि नहीं होते तो स्कन्ध में भी वे कहां से आते ?

प्र०—परमाणु में रूपादि बीस गुणों में से कितने गुण पाये जाते हैं ?

उ०—परमाणु में एक रस, एक गन्ध, एक वर्ण और दो स्पर्श पाये जाते हैं।

प्र०—अजीव द्रव्य कौन-कौन से हैं ?

उ०—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल—ये पाँच द्रव्य अजीव द्रव्य हैं।

प्र०—मूर्तिक द्रव्य कितने हैं ? अमूर्तिक कितने ?

उ०—जीव धर्म, अधर्म, आकाश और काल—ये अमूर्तिक हैं और पुद्गल मूर्तिक है।

पुद्गल द्रव्य की पर्यायें

सद्दो बंधो सुहुमो थूलो संठाणभेदतमछाया ।
उज्जोदादवसहिया पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥१६॥

अन्वयार्थ—

(सद्दो) शब्द । (बंधो) बन्ध । (सुहुमो) सूक्ष्म । (थूलो) स्थूल । (संठाणभेदतमछाया) आकार, टुकड़े, अन्धकार और छाया । (उज्जोदादवसहिया) उद्योत और आतप सहित । (पुग्गलदव्वस्स) पुद्गलद्रव्य की । (पज्जाया) पर्यायें (हैं) ।

अर्थ—

शब्द, बन्ध, सूक्ष्म, स्थूल, आकार, टुकड़े, अन्धकार, छाया, उद्योत और आतप—ये दस पुद्गल की पर्यायें हैं ।

प्र०—शब्द के भेद बताइये ?

उ०—शब्द के दो भेद हैं—१-भाषारूप और २-अभाषारूप ।

प्र०—भाषात्मक शब्द के भेद कौन से हैं ?

उ०—भाषात्मक शब्द के दो भेद हैं—१-साक्षर भाषा, २-अनक्षर भाषा ।

प्र०—साक्षर शब्द किन्हें कहते हैं ?

उ०—जिसमें शास्त्र रचे जाते हैं और जिससे आर्य और म्लेच्छों का व्यवहार चलता है ऐसे संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी आदि शब्द सब साक्षर शब्द हैं ।

प्र०—अनक्षर शब्द किन्हें कहते हैं ?

उ०—जिससे उनके सातिशय ज्ञान के स्वरूप का पता लगता है ऐसे दो इन्द्रिय आदि जीवों के शब्द अनक्षरात्मक शब्द हैं । (साक्षर व अनक्षर दोनों शब्द प्रायोगिक हैं)

प्र०—अभाषात्मक शब्द के भेद बताइये ।

उ०—अभाषात्मक शब्द दो प्रकार के हैं—१-प्रायोगिक, २-वैस्रसिक ।

प्र०—प्रायोगिक शब्द कौन से हैं ।

उ०—तत, वितत, घन और सौषिर के भेद से प्रायोगिक शब्द चार प्रकार के हैं ।

प्र०–तत प्रायोगिक शब्द कौन से हैं ?

उ०–चमड़े से मढ़े हुए, पुष्कर, भेरी और दुर्दुर से जो शब्द उत्पन्न होता है वह तत शब्द है।

प्र०–वितत शब्द कौन-सा है ?

उ०–तांत वाले वीणा और सुघोष आदि से जो शब्द उत्पन्न होता है वह वितत शब्द है।

प्र०-घन शब्द कौन-सा है ?

उ०–ताल, घण्टा और लालन आदि के ताड़न से जो शब्द उत्पन्न होता है वह घन शब्द है।

प्र०–सौषिर शब्द कौन-से हैं ?

उ०–बांसुरी और शंख आदि के फूंकने से जो शब्द उत्पन्न होता है वह सौषिर है।

प्र०–वैस्रसिक शब्द कौन-से हैं ?

उ०-मेघ आदि के निमित्त से जो शब्द उत्पन्न होते हैं वे वैस्रसिक शब्द हैं।

प्र०–बन्ध पर्याय के भेद बताइये।

उ०–बन्ध पुद्गल पर्याय के २ भेद हैं—१-वैस्रसिक और २–प्रायोगिक।

प्र०–वैस्रसिक बन्ध किसे कहते हैं ?

उ०-जिसमें पुरुष का प्रयोग अपेक्षित नहीं है वह वैस्रसिक बंध है। जैसे—स्निग्ध और रूक्ष गुण के निमित्त से होने वाला बिजली, उल्का, मेघ, अग्नि और इन्द्रधनुष आदि का विषयभूत बन्ध वैस्रसिक बन्ध है।

प्र०–प्रायोगिक बन्ध किसे कहते हैं ? इसके भेद बताइये।

उ०–जो बंध पुरुष के प्रयोग के निमित्त से होता है वह प्रायोगिक बन्ध है। इसके दो भेद हैं—१–अजीव सम्बन्धी, २–जीवाजीव सम्बन्धी। जैसे—लाख और लकड़ी आदि का अजीव सम्बन्धी प्रायोगिक बन्ध है तथा कर्म और नोकर्म का जीव के साथ जो बन्ध होता है वह जीवाजीव सम्बन्धी प्रायोगिक बन्ध है।

प्र०–सूक्ष्मता के भेद बताइये।

उ०–सूक्ष्मता दो प्रकार की होती है—१–अन्त्य और २–आपेक्षिक। परमाणुओं में अन्त्य सूक्ष्मता है (परमाणु से छोटा कोई पदार्थ नहीं है)

और बेल, आँवला और बेर में आपेक्षिक सूक्ष्मत्व है। बेल से आँवला छोटा है तथा आँवला से बेर छोटा है।

प्र०—स्थौल्य किसे कहते हैं ? उसके भेद बताइये।

उ०—स्थूलता को स्थौल्य कहते हैं। यह भी दो प्रकार का है—१—अन्त्य और २—आपेक्षिक। महास्कन्ध अन्त्य स्थौल्य है (महास्कन्ध से बड़ा कोई पदार्थ नहीं है)। बेर, आँवला और बेल आदि में आपेक्षिक स्थौल्य है। बेर से आँवला बड़ा है तथा आँवला से बेल बड़ा है।

प्र०—संस्थान किसे कहते हैं ?

उ०—आकृति को संस्थान कहते हैं। त्रिकोण, चतुष्कोण आदि आकार संस्थान हैं।

प्र०—भेद किसे कहते हैं ? इसके भेद बताओ।

उ०—वस्तु को अलग-अलग चूर्णादि करना भेद है। भेद के छः भेद हैं—१—उत्कर, २—चूर्ण, ३—खण्ड, ४—चूर्णिका, ५—प्रतर और ६—अणुचटन।

प्र०—उत्कर किसे कहते हैं ?

उ०—करोंत आदि से जो लकड़ी को चीरा जाता है वह उत्कर नाम का भेद है।

प्र०—चूर्ण भेद किसे कहते हैं ?

उ०—गेहूँ आदि का जो सत्तू और कनक (दलिया) आदि बनता है वह चूर्ण भेद है।

प्र०—खण्ड भेद बताइये।

उ०—घट आदि के जो कपाल और शर्करा आदि टुकड़े होते हैं वह खण्ड भेद है।

प्र०—चूर्णिका भेद बताइये।

उ०—उड़द और मूँग आदि का जो खण्ड किया जाता है वह चूर्णिका भेद है।

प्र०—प्रतर भेद बताइये।

उ०—मेघ के जो अलग-अलग पटल आदि होते हैं वह प्रतर नाम का भेद है।

प्र०—अणुचटन भेद बताइये ?

उ०—तपाये हुए लोहे के गोले आदि को घन आदि से पीटने पर जो फुलंगे निकलते हैं वह अणुचटन नाम का भेद है।

प्र०—तम किसे कहते हैं ?

उ०—जिससे दृष्टि में प्रतिबंध होता है और जो प्रकाश का विरोधी है वह तम कहलाता है।

प्र०—छाया किसे कहते हैं ?

उ०—प्रकाश को रोकने वाले पदार्थों के निमित्त से जो पैदा होती है वह छाया कहलाती है।

प्र०—आतप किसे कहते हैं ?

उ०—जो सूर्य के निमित्त से उष्ण प्रकाश होता है उसे आतप कहते हैं।

प्र०—उद्योत किसे कहते हैं ?

उ०—चन्द्रमणि और जुगनू आदि के निमित्त से जो प्रकाश होता है उसे उद्योत कहते हैं। (ऊपर कहे ये सब शब्दादिक पुद्गल द्रव्य के विकार—पर्याय हैं)।

धर्मद्रव्य का स्वरूप

गइपरिणयाण धम्मो, पुग्गलजीवाण गमणसहयारी।
तोयं जह मच्छाणं, अच्छंता णेव सो णेई ॥१७॥

अन्वयार्थ—

(जह) जैसे। (गइपरिणयाण) चलते हुए। (मच्छाणं) मछलियों को (गमणसहयारी) चलने में सहायक। (तोयं) जल होता है। (तह) उसी प्रकार। (गइपरिणयाण) चलते हुए। (पुग्गलजीवाण) जीव और पुद्गल को (गमणसहयारी) चलने में सहायक। (धम्मो) धर्मद्रव्य होता है। (सो) वह धर्मद्रव्य। (अच्छंता) न चलते हुए जीव और पुद्गल को (चलने में सहायक) (णेव) नहीं। (णेई) चलाता है।

अर्थ—

जैसे जल चलती हुई मछलियों को चलने में सहायक होता है उसी प्रकार धर्मद्रव्य चलते जीव और पुद्गल को चलने में सहकारी होता है। नहीं चलते हुए को नहीं।

प्र०—निमित्त कितने प्रकार के होते हैं।

उ०—दो प्रकार के—१-प्रेरक निमित्त, २-उदासीन निमित्त।

प्र०—धर्मद्रव्य जीव और पुद्गल के लिए कौन-सा निमित्त है ?

उ०—धर्मद्रव्य जीव और पुद्गल में गमन में सहकारी उदासीन निमित्त है क्योंकि यह जबरन किसी को चलाता नहीं। हाँ कोई चलता है तो सहायक होता है।

प्र०—धर्मद्रव्य कहाँ पाया जाता है ?

उ०—सम्पूर्ण लोकाकाश में धर्म द्रव्य पाया जाता है। धर्म द्रव्य की सहायता बिना जीव पुद्गल का चलना-फिरना, एक स्थान से दूसरे स्थान जाना आदि सारी क्रियाएँ नहीं बन सकती हैं।

अधर्मद्रव्य का स्वरूप

ठाणजुदाण अधम्मो, पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी।
छाया जह पहियाणं, गच्छंता णेव सो धरई ॥१८॥

अन्वयार्थ—

(जह) जैसे। (छाया) छाया। (ठाणजुदाण) ठहरते हुए। (पहियाणं) राहगीरों को। (ठाणसहयारी) ठहरने में सहायक होती है। (तह) उसी प्रकार। (पुद्गलजीवाण) पुद्गल और [जीवों को ठहरने में सहायक] (अधम्मो) अधर्म द्रव्य होता है। (सो) वह अधर्म-द्रव्य है। (गच्छंता) चलते हुए पुद्गल और जीवों को। (णेव) नहीं। (धरई) ठहराता है।

अर्थ—

जैसे छाया ठहरते हुए राहगीरों को ठहरने में सहायता पहुँचाती है, उसी प्रकार अधर्म द्रव्य ठहरे हुए जीव पुद्गल को ठहरने में सहायता पहुँचाता है। वह अधर्म द्रव्य चलते हुए जीव और पुद्गल को ठहराता नहीं है।

प्र०—अधर्म द्रव्य जीव पुद्गलों के ठहराने में कौन-सा निमित्त है ?

उ०—उदासीन निमित्त है क्योंकि जैसे छाया किसी को जबरन नहीं ठहराती, उसी तरह अधर्म द्रव्य भी किसी को जबरन नहीं ठहराता।

प्र०—धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य दोनों कहाँ रहते हैं ?

उ०—समस्त लोकाकाश में रहते हैं।

प्र०—दोनों में समान शक्ति है या न्यूनाधिक ?

उ०—दोनों में समान शक्ति है।

प्र०—यदि दोनों में समान शक्ति है तो संसार में न कोई चल सकता है और न कोई ठहर सकता है, क्योंकि जिस समय धर्म द्रव्य चलने में किसी को सहायक होगा उसी समय अधर्म द्रव्य ठहरने में सहायक होगा।

उ०—धर्म और अधर्म द्रव्य उदासीन कारण हैं यदि प्रेरक कारण होते तो ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती थी। धर्म द्रव्य जबरन किसी को चलने की प्रेरणा नहीं करता तथा अधर्म द्रव्य भी जबरन किसी को ठहरने की प्रेरणा नहीं करता।

आकाश द्रव्य का स्वरूप व भेद

अवगासदाणजोग्गं जीवादीणं वियाण आयासं।
जेण्हं लोगागासं, अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥१९॥

अन्वयार्थ—

(जीवादीणं) जीवादि समस्त द्रव्यों को। (अवगासदाणजोग्गं) अवकाश देने योग्य। (जेण्हं) जिनेन्द्र देव के द्वारा कहा गया। (आयासं) आकाश। (वियाणं) जानो। (लोगागासं) लोकाकाश। (अल्लोगागासं) अलोकाकाश। (यदि) इस प्रकार। (दुविहं) आकाश दो प्रकार का है।

अर्थ—

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल इन द्रव्यों को जो अवकाश देने योग्य है उसे आकाश द्रव्य जिनेन्द्र भगवान ने कहा है। उस आकाश के दो भेद हैं—१–लोकाकाश, २–अलोकाकाश।

प्र०—आकाश द्रव्य किसे कहते हैं ?

उ०—जीवादि पांच द्रव्यों को रहने के लिए जो अवकाश स्थान दे, उसे आकाश द्रव्य कहते हैं।

प्र०—आकाश द्रव्य का कार्य बताइये।

उ०—अवकाश देना आकाश द्रव्य का कार्य है।

प्र०—आकाश द्रव्य जीवादि द्रव्यों के अवगाहन में कौन-सा निमित्त है ?

उ०—उदासीन निमित्त है।

लोकाकाश और अलोकाकाश का स्वरूप

धम्मा-धम्मा कालो, पुग्गलजीवा य संति जावदिये।
आयासे सो लोगो, तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥२०॥

अन्वयार्थ—

(जावदिये) जितने। (आयासे) आकाश में। (धम्माधम्मा) धर्म और अधर्म। (कालो) काल। (य) और। (पुग्गलजीवा) पुद्गल तथा जीवद्रव्य। (संति) हैं (सो) वह। (लोगो) लोकाकाश है। (तत्तो परदो) उससे बाहर। (अलोगुत्तो) अलोकाकाश कहा गया है।

अर्थ—

जितने आकाश में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल हैं वह लोकाकाश व उससे बाहर अलोकाकाश कहा गया है।

प्र०—लोक किसे कहते हैं?

उ०—जीव और अजीव द्रव्य जितने आकाश में पाये जांय उतने आकाश को लोक कहते हैं।

प्र०—अलोक किसे कहते हैं।

उ०—लोक के बाहर केवल आकाश-ही-आकाश है। जहाँ अन्य द्रव्यों का निवास नहीं है, इस खाली पड़े हुए आकाश को अलोक कहते हैं।

प्र०—लोकाकाश और अलोकाकाश किन्हें कहते हैं?

उ०—लोक के आकाश को लोकाकाश और अलोक के आकाश को अलोकाकाश कहते हैं।

प्र०—जब सभी द्रव्य एक ही लोकाकाश में रहते हैं तो सब एक क्यों नहीं हो जाते?

उ०—सभी अपने-अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते, अतः एक कैसे हो सकते हैं?

प्र०—लोकाकाश बड़ा है या अलोकाकाश?

उ०—अलोकाकाश बड़ा है। अलोकाकाश का अनन्तवाँ भाग लोकाकाश है।

प्र०—इतने छोटे लोकाकाश में अनन्त जीव, जीवों से भी अनन्तगुणे पुद्गल और असंख्यात काल परमाणु कैसे समा सकते हैं ?

उ०—लोकाकाश अलोकाकाश से छोटा होने पर भी उसमें अवगाहन शक्ति बहुत बड़ी है। इसीलिए उसमें सभी द्रव्य समाये हुए हैं।

उदाहरण के लिए—जिस कमरे मे एक दीपक का प्रकाश हो रहा है, उसी में अन्य सैकड़ों दीपक रख दिये जायें तो उनका प्रकाश भी पहले वाले दीपक में समा जाता है। आकाश एक अमूर्तिक द्रव्य है। उसमें अवगाहन करने वाले सभी द्रव्य यदि मूर्तिक और स्थूल होते तथा आकाश स्वयं भी मूर्तिक होता तो लोकाकाश से इतने द्रव्यों का अवगाहन नहीं होता। पर लोकाकाश में निवास करने वाले अनन्त जीव अमूर्तिक हैं, पुद्गलों में भी कुछ सूक्ष्म हैं और कुछ बादर हैं, कालाणु, धर्म, अधर्म द्रव्य अमूर्तिक ही हैं अतः आकाश में सभी द्रव्य समाये हुए हैं, इसमें कोई विरोध नहीं आता है।

कालद्रव्य का स्वरूप व उसके दो भेद

दव्वपरिवट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो ।
परिणामादीलक्खो वट्टणलक्खो य परमट्ठो ॥२१॥

अन्वयार्थ—

(जो) जो। (दव्वपरिवट्टरूवो) जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आदि द्रव्यों के परिवर्तन में कारण है। (सो) वह। (कालो) कालद्रव्य। (हवेइ) है। (परिणामादीलक्खो) परिणाम आदि जिसका लक्षण है। (ववहारो) वह व्यवहार काल है। (य) और। (वट्टणलक्खो) वर्तना लक्षण वाला। (परमट्ठो) परमार्थ अर्थात् निश्चय काल है।

अर्थ—

सभी द्रव्यों में परिवर्तन होता रहता है। इस परिवर्तन में जो कारण है वह कालद्रव्य कहलाता है। काल द्रव्य के दो भेद हैं—१–व्यवहार काल, २–निश्चय काल। जिसका लक्षण परिणाम आदि है वह व्यवहार-काल है और जिसका लक्षण वर्तना है वह निश्चयकाल है।

प्र०—कालद्रव्य अन्य द्रव्यों के परिणमन में कौन-सा निमित्त है ?

उ०—उदासीन निमित्त है।

प्र०—वर्तना किसे कहते हैं ?

उ०—समस्त द्रव्यों में सूक्ष्म परिवर्तन के निमित्त को वर्तना कहते हैं। जैसे कपड़ा, मकान वस्त्रादि में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है, सूक्ष्म परिवर्तन है। कपड़ा, मकानादि जीर्ण हो जाते हैं। मनुष्य, स्त्री-पुरुष पचास वर्ष, पच्चीस वर्ष पुराना हो गया, यह काल द्रव्य का ही प्रभाव है।

प्र०—परिणाम किसे कहते हैं ?

उ०—समस्त द्रव्यों के स्थूल परिवर्तन के निमित्त को परिणाम कहते हैं।

प्र०—'परिणामादी' यहाँ आदि से क्या लिया गया है ?

उ०—परिणाम तथा क्रिया, परत्व और अपरत्व लिये गये हैं।

निश्चय काल का स्वरूप

लोयायासपदेसे, इक्केक्के जे ठिया हु इक्केक्का।
रयणाणं रासीमिव, ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥२२॥

अन्वयार्थ—

(इक्केक्के) एक-एक। (लोयायासपदेसे) लोकाकाश के प्रदेश पर। (जे) जो। (रयणाणं) रत्नों को। (रासीमिव) राशि अर्थात् ढेरी के समान। (इक्केक्का) एक-एक। (कालाणू) काल द्रव्य के अणु। (ठिया) स्थित हैं। (ते) वे। (हु) निश्चय से। (असंखदव्वाणि) असंख्यात द्रव्य हैं।

अर्थ—

लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु रत्नों की राशि के समान स्थित हैं वे कालाणु असंख्यात हैं।

प्र०—लोकाकाश में काल द्रव्य कैसे स्थित हैं ? क्या वे आपस में चिपकते नहीं हैं ?

उ०—लोकाकाश असंख्यप्रदेशी है। एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु रत्नराशि के समान स्थित है। जैसे रत्नों की ढेरी में एक-एक रत्न दूसरे से मिले तो रहते हैं किन्तु आपस में चिपकते नहीं हैं वैसे ही लोकाकाश के प्रदेशों पर स्थित कालाणु भी आपस में चिपकते नहीं हैं।

प्र०—कालाणु असंख्यात हैं, इसका प्रमाण क्या है ?

उ०—लोकाकाश के प्रदेश असंख्यात हैं अतः उन पर स्थित कालाणु भी असंख्यात हैं।

छः द्रव्यों का उपसंहार और पाँच अस्तिकायों का वर्णन

एवं छब्भेयमिदं, जीवाजीवप्पभेददो दव्वं।
उत्तं कालविजुत्तं, णायव्वा पंच अत्थिकाया दु ॥२३॥

अन्वयार्थ—

(एवं) इस प्रकार। (जीवाजीवप्पभेददो) जीव-अजीव के भेद से। (इदं) यह। (दव्वं) द्रव्य। (छब्भेय) छह प्रकार का। (उत्तं) कहा गया है। (दु) और। (कालविजुत्तं) कालद्रव्य को छोड़कर शेष। (पंच) पाँच। (अत्थिकाय) अस्तिकाय। (णायव्वा) जानने चाहिए।

अर्थ—

संक्षेप से इस प्रकार जीव-अजीव के भेद से द्रव्य छह प्रकार का कहा जाता है। कालद्रव्य को छोड़कर शेष पाँच द्रव्य अस्तिकाय जानने चाहिए।

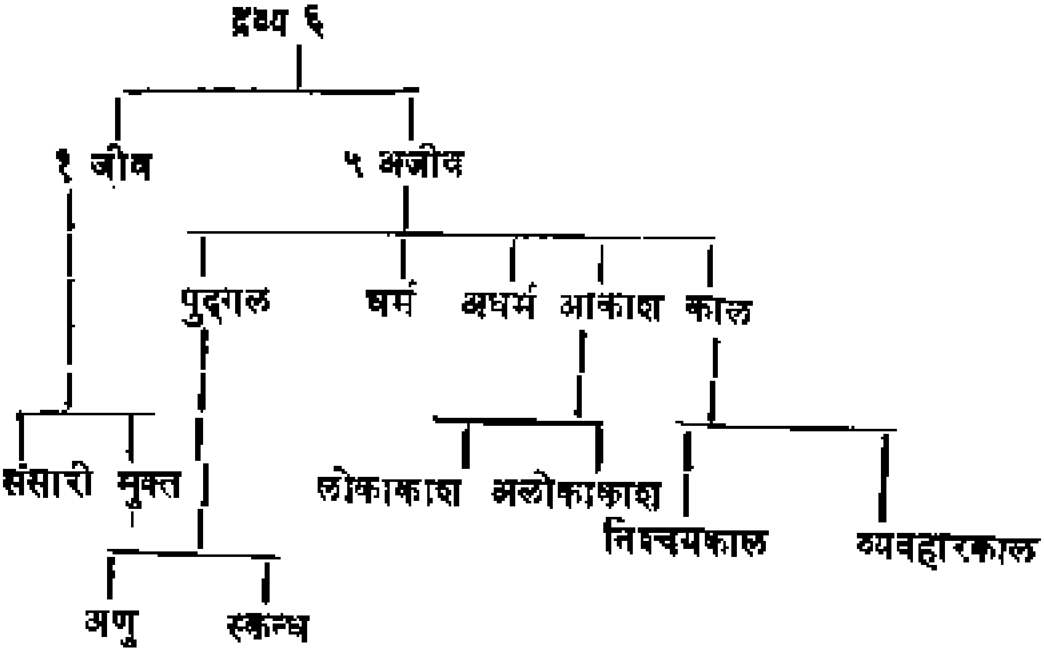

प्र०—कालद्रव्य को अस्तिकाय क्यों नहीं कहा ?

उ०—कालद्रव्य के केवल एक ही प्रदेश होता है (कालद्रव्य एक-प्रदेशी है) इसलिए अस्तिकाय नहीं कहा।

प्र०—एक पुद्गल परमाणु भी एकप्रदेशी होता है, उसे अस्तिकाय क्यों कहा गया ?

उ०—कालाणु सदा एक प्रदेश वाला ही रहता है किन्तु पुद्गल परमाणु में विशेषता है—वह एक प्रदेश वाला होकर भी स्कन्ध रूप में परिणत होते ही नाना प्रदेश (संख्यात, असंख्यात, अनन्त) वाला हो जाता है। कालाणु में बहुप्रदेशीपने की योग्यता ही नहीं है परमाणु में वह योग्यता है इसलिए परमाणु को अस्तिकाय कहा गया है।

प्र०—अणु-अणु सब समान होने पर भी कालाणु में बहुप्रदेशीपने की योग्यता क्यों नहीं है ?

उ०—पुद्गल अणु सभी समान होते हैं पर कालाणु पुद्गल के अणुओं के समान नहीं हो सकते हैं। पुद्गल परमाणु में रूप, रस आदि पाये जाते हैं इसलिए वह मूर्तिक है, स्कन्ध बन जाता है परन्तु कालाणु अमूर्तिक है, स्पर्श, रसादि गुणों से रहित है अतः उसमें बहुप्रदेशीपना बन नहीं पाता।

अस्तिकाय का लक्षण

संति जदो तेणेदे अत्थीत्ति भणंति जिणवरा जम्हा।
काया इव बहुदेसा तम्हा काया य अत्थिकाया य ॥२४॥

अन्वयार्थ—

(जदो) क्योंकि। (एदे) ये द्रव्य (जीवादि ६) (सन्ति) सदा विद्यमान रहते हैं। (तेण) इसलिए। (जिणवर) जिनेन्द्रदेव। (अत्थित्ति) अस्ति ऐसा। (भणंति) कहते हैं। (य) और। (जम्हा) क्योंकि। (काया इव) शरीर के समान। (बहुदेसा) बहुप्रदेशी हैं। (तम्हा) इसलिए। (काया) 'काय' ऐसा कहते हैं। (य) और। ('अत्थि-काया') दोनों मिलने पर 'अस्तिकाय' कहलाते हैं।

अर्थ—

अस्तिकाय में दो शब्द हैं—एक अस्ति और दूसरा काय। जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश तथा काल ये सदा रहते हैं इसलिए जिनेन्द्रदेव इनको 'अस्ति' कहते हैं तथा (काल को छोड़कर) शरीर के समान बहुप्रदेशी हैं अतः काय ऐसा कहते हैं। दोनों मिलने पर 'अस्ति-काय' कहलाते हैं।

प्र०—अस्ति किसे कहते हैं ?

उ०—जो सदा विद्यमान रहे, जिसका कभी नाश नहीं हो, वह 'अस्ति' कहलाता है।

प्र०—'अस्ति' द्रव्य कितने हैं ?

उ०—जीव, पुद्गल, धर्मादि छहों द्रव्य 'अस्ति' रूप हैं।

प्र०—'काय' किसे कहते हैं ?

उ०—जो शरीर के समान बहुप्रदेशी हो उसे काय कहते हैं।

प्र०—'काय' द्रव्य कितने हैं ?

उ०—काल द्रव्य को छोड़कर शेष पाँच द्रव्य कायवान हैं। काल एकप्रदेशी ही है।

प्र०—अस्तिकाय किसे कहते हैं ?

उ०—जो अस्ति रूप भी हो तथा कायवान भी हो, वह अस्तिकाय है।

प्र०—अस्तिकाय कितने हैं ?

उ०—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश पाँच अस्तिकाय हैं।

प्र०—कालद्रव्य अस्तिकाय क्यों नहीं है ?

उ०—काल द्रव्य अस्ति रूप तो है किन्तु कायवान नहीं है अतः अस्तिकाय नहीं है।

द्रव्यों के प्रदेशों की संख्या

होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे अणंत आयासे।
मुत्ते तिविह पदेसा कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥२५॥

अन्वयार्थ—

(जीवे) एक जीव में। (धम्माधम्मे) धर्म और अधर्म द्रव्य में। (असंखा) असंख्यात। (आयासे) आकाश में। (अणंत) अनन्त। (मुत्ते) पुद्गल द्रव्य में। (तिविह) तीन प्रकार के संख्यात, असंख्यात और अनन्त। (पदेसा) प्रदेश। (होंति) होते हैं। (कालस्स) काल-द्रव्य का। (एगो) केवल एक ही प्रदेश होता है। (तेण) इसीलिए। (सो) वह काल। (काओ) काय अर्थात् बहुप्रदेशी। (ण) नहीं है।

अर्थ—

एक जीवद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य—तीनों के असंख्यात प्रदेश हैं।

आकाश–अनन्त प्रदेशी है, पुद्गल–संख्यात, असंख्यात व अनन्त प्रदेशी है तथा काल द्रव्य एक प्रदेशी है।

प्र०–एक जीव के असंख्यात प्रदेशों का प्रमाण क्या है?

उ०–एक जीव के असंख्यात प्रदेश होते हैं क्योंकि वह सम्पूर्ण लोकाकाश को व्याप्त होने की क्षमता रखता है।

अथवा

लोकपूरण समुद्घात में जीव के प्रदेश सम्पूर्ण लोकाकाश में फैल जाते हैं इससे भी सिद्ध है कि जीव के असंख्यात प्रदेश हैं।

प्र०–धर्म और अधर्मद्रव्य के असंख्यात प्रदेश की प्रमाणता दीजिये।

उ०–धर्म और अधर्मद्रव्य भी असंख्यात प्रदेशी हैं, क्योंकि ये दोनों समस्त लोकाकाश में व्याप्त हैं और लोकाकाश असंख्यात प्रदेशी है अतः उसमें व्याप्त होकर रहने को (जीव की दृष्टि से) और व्याप्त होकर रहने वाले (धर्म और अधर्म) असंख्यात प्रदेशी हैं।

प्र०–आकाश के अनन्त प्रदेशों की प्रमाणता दीजिये।

उ०–आकाश अनन्तप्रदेशी है क्योंकि वह लोक के ऊपर नीचे और अगल-बगल में चारों ओर से फैला हुआ (कहाँ तक फैला हुआ है, इसकी कोई सीमा नहीं है) है अतः आकाश की अनन्तप्रदेशीपना सिद्ध है।

प्र०–मूर्त पुद्गल द्रव्य में संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेशी सिद्ध कीजिये।

उ०–मूर्त पुद्गल में द्रव्य संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश पाये जाते हैं। इसका कारण है कि पुद्गलों में पूरण और गलन होता रहता है; अतः कभी वे परमाणु रूप से बिखर जाते हैं और कभी आपस में मिलकर स्कन्ध बन जाते हैं। उनमें कोई स्कन्ध संख्यात अणु मिलकर संख्यातप्रदेशी, कोई असंख्यात अणु मिलकर असंख्यातप्रदेशी तथा कोई अनन्त परमाणुओं के मिलने से अनन्तप्रदेशी होते हैं। (जब तक परमाणु अलग-अलग रहते हैं तब तक वे एकप्रदेशी होते हैं)।

प्र०–कालद्रव्य कायवान क्यों नहीं है?

उ०–कालद्रव्य एक प्रदेशी है अतः वह कायवान नहीं है।

उपचार से एक पुद्गल परमाणु भी बहुप्रदेशी है

एयपदेसो वि अणू णाणाखंधप्पदेसदो होदि।
बहुदेसो उवयारा तेण य काओ भणंति सव्वण्हु ॥२६॥

अन्वयार्थ—

(एयपदेशो वि) एक प्रदेशवाला भी। (अणू) पुद्गल परमाणु। (णाणाखंधप्पदेसदो) नाना स्कन्धों का कारण होने से। (बहुदेसो) बहुप्रदेशी। (होदि) होता है। (य) और। (तेण) इसलिए। (सव्वण्हु) सर्वज्ञदेव। (उवयारा) उपचार से। (काओ) उसे काय अर्थात् बहु-प्रदेशी। (भणंति) कहते हैं।

अर्थ—

पुद्गल परमाणु एकप्रदेशी होता है, तो भी सर्वज्ञदेव ने उसे उपचार से बहुप्रदेशी कहा है क्योंकि वह नाना स्कन्ध रूप होने की योग्यता रखता है।

प्र०—उपचार किसे कहते हैं ?

उ०—किसी वस्तु को किसी निमित्त स्वभाव से भिन्न रूप कहना उपचार कहलाता है। जैसे—शुद्ध पुद्गल परमाणु स्वभाव से एकप्रदेशी है किन्तु अन्य के (पुद्गलों के) संयोग से बहु (संख्यात, असंख्यात, अनन्त) बहुप्रदेशी कहलाता है।

प्र०—परमाणु स्कन्ध रूप किस गुण के कारण हो जाता है ?

उ०—पुद्गल परमाणु में स्निग्ध-रूक्ष गुण पाये जाते हैं। स्निग्ध-स्निग्ध या स्निग्ध-रूक्ष या रूक्ष-रूक्ष या रूक्ष-स्निग्ध गुण के परमाणु मिलने से परमाणु, स्कन्ध पर्याय को प्राप्त होता है।

प्रदेश का लक्षण

जावदियं आयासं, अविभागीपुग्गलाणुवट्ठद्धं।
तं खु पदेसं जाणे, सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥२७॥

अन्वयार्थ—

(जावदियं) जितना। (आयासं) आकाश। (अविभागीपुग्गलाणु-वट्ठद्धं) एक अविभागी अर्थात् जिसका दूसरा विभाग न हो सके ऐसे

पुद्गल परमाणु से व्याप्त हो। (तं) उसे। (खु) निश्चय से। (सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं) समस्त अणुओं को स्थान देने में समर्थ। (पदेसं) प्रदेश। (जाणे) जानो।

अर्थ—

(पुद्गल के सबसे छोटे टुकड़े को अणु कहते हैं) एक पुद्गल परमाणु जितना आकाश घेरता है, निश्चय से उसे समस्त अणुओं को स्थान देने में समर्थ प्रदेश जानो।

प्र०—प्रदेश का लक्षण बताइये।

उ०—एक पुद्गल परमाणु जितने आकाश क्षेत्र को घेरे, उसे प्रदेश कहते हैं।

प्र०—यदि परमाणु जितने क्षेत्र में रहता है उसे प्रदेश कहते हैं तो वहाँ अन्य परमाणु कैसे रहेंगे ?

उ०—आकाश में अवगाहन शक्ति है अतः एक प्रदेश में नाना सूक्ष्म परमाणु भी समा सकते हैं। जैसे—लोहे में अग्नि के प्रदेश समा जाते हैं।

आकाश के जिस एक प्रदेश पर काल का एक अणु या एक कालद्रव्य समाया है उसी प्रदेश में धर्म-अधर्म द्रव्य के प्रदेश भी समाये हुए हैं। यदि उसी में अन्य सूक्ष्म परमाणु भी आ जाएँ तो वे भी समा सकते हैं।

प्र०—असंख्यातप्रदेशी लोक में अनन्त जीव, अनन्तानन्त पुद्गल कैसे रहते हैं ?

उ०—यह आकाश द्रव्य में रहने वाले अवगाहन गुण का प्रभाव है। एक निगोदिया जीव के शरीर में सिद्धराशि से अनन्त गुण समाये हुए हैं। इसी प्रकार असंख्यातप्रदेशी लोकाकाश में अनन्तानन्त जीव और उनसे भी अनन्त गुणे पुद्गल समाये हुए हैं।

प्र०—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्यों की संख्या बताइये।

उ०—जीव—अनन्तानन्त हैं।

पुद्गल—जीव द्रव्य से अनन्तगुणे पुद्गल हैं।

धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य—एक-एक हैं।

आकाश—एक अखण्ड द्रव्य है। छः द्रव्यों के निवास की अपेक्षा इसके दो भेद हैं—१-लोकाकाश, २-अलोकाकाश।

कालद्रव्य—असंख्यात हैं।

प्र०—आपके पास अभी कितने द्रव्य हैं ? समझाइये।

उ०—हमारे पास अभी छहों द्रव्य हैं—हम जीव हैं। शरीर पुद्गल द्रव्य है।

हमारे बैठने में अधर्म द्रव्य सहायक है। हमारे हाथ-पैरों को उठाने में धर्मद्रव्य सहायक है। हम आकाश में बैठे हैं। प्रति समय सूक्ष्म परिणमन में निश्चय काल कारण है तथा आज हम बीस वर्ष पुराने हो गये, यह व्यवहार काल बता रहा है।

द्वितीयोऽधिकारः

आस्रव आदि पदार्थों के कथन की प्रतिज्ञा

आसवबन्धणसंवरणिज्जरमोक्खो सपुण्णपावा जे।
जीवाजीवविसेसा, ते वि समासेण पभणामो ॥२८॥

अन्वयार्थ—

(जे) जो। (आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खा) आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष। (सपुण्णपावा) पुण्य-पाप सहित (सात पदार्थ)। (जीवाजीवविसेसा) जीव और अजीव द्रव्य के विशेष भेद हैं। (तेवि) उन्हें भी। (समासेण) संक्षेप से। (पभणामो) आगे कहते हैं।

अर्थ—

जो आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष तथा पुण्य-पाप—ये सात पदार्थ हैं वे जीव-अजीव द्रव्य के ही विशेष भेद हैं। उन्हें भी आगे संक्षेप से कहते हैं।

प्र०—मूल द्रव्य कितने हैं ?

उ०—दो हैं—१—जीव, २—अजीव।

प्र०—मूल तत्त्व कितने हैं ?

उ०—दो हैं—१—जीव, २—अजीव।

प्र०—तत्त्व विशेष रूप से कितने हैं ?

उ०—विशेष रूप से तत्त्व सात हैं—१—जीव, २—अजीव, ३—आस्रव, ४—बन्ध, ५—संवर, ६—निर्जरा और ७—मोक्ष।

प्र०—तत्त्व किसे कहते हैं ?

उ०—'तस्य भावः तत्त्वं' जिस वस्तु का जो भाव है वह तत्त्व है।

प्र०—पदार्थ कितने हैं ?

उ०—सात तत्त्वों में पुण्य-पाप को मिलाने पर—जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप—नौ पदार्थ कहलाने लगते हैं।

प्र०—नौ पदार्थों का स्वरूप संक्षेप में बताइये।

उ०—१. **जीव**—जिसमें चेतना पायी जाए वह जीव है।

२. **अजीव**—जिसमें चेतना नहीं है वह अजीव है।

३. **आस्रव**—कर्मों का आना आस्रव है।

४. **बन्ध**—कर्मों का आत्मा के साथ दूध पानी की तरह मिल जाना बन्ध है।

५. **संवर**—आत्मा में कर्मों का आना, रुक जाना संवर है।

६. **निर्जरा**—कर्मों का एक देश खिर जाना या झड़ जाना निर्जरा है।

७. **मोक्ष**—कर्मों का सर्वदेश खिर जाना या झड़ जाना मोक्ष है।

८. **पुण्य**—जो आत्मा को पवित्र करे वह पुण्य कहलाता है।

९. **पाप**—जो आत्मा को शुभ से रक्षा करे अर्थात् जो आत्मा का पतन करे वह पाप कहलाता है।

भावास्रव व द्रव्यास्रव के लक्षण

आसवदि जेण कम्मं, परिणामेणप्पणो स विण्णेओ।
भावासवो जिणुत्तो, कम्मासवणं परो होदि ॥२९॥

अन्वयार्थ—

(अप्पणो) आत्मा के। (जेण) जिस। (परिणामेण) परिणाम से। (कम्मं) पुद्गल कर्म। (आसवदि) आता है। (स) वह। (जिणुत्तो) जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा गया। (भावासवो) भावास्रव। (विण्णेओ) जानना चाहिए। (कम्मासवणं) कर्मों का आना। (परो) द्रव्यास्रव। (होदि) होता है।

अर्थ—

आत्मा के जिस परिणाम से पुद्गल कर्म आता है वह जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा गया भावास्रव जानना चाहिए तथा कर्मों का आना द्रव्यास्रव होता है।

प्र०—आस्रव किसे कहते हैं ?

उ०—आत्मा में कर्मों का आना आस्रव कहलाता है।

प्र०—आस्रव के कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं—१-भावास्रव, २-द्रव्यास्रव।

प्र०—भावास्रव किसे कहते हैं ?

उ०—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग रूप जिन परिणामों से कर्मों का आस्रव होता है उन परिणामों को भावास्रव कहते हैं।

प्र०—द्रव्यास्रव का स्वरूप बताइये।

उ—ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्मों का आना द्रव्यास्रव कहलाता है।

प्र०—परिणाम किसे कहते हैं ?

उ०—आत्मा के शुभाशुभ भाव परिणाम कहलाते हैं।

भावास्रव के नाम व भेद

मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोहादओऽथ विण्णेया।
पण पण पणदस तिय, चदु, कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥३०॥

अन्वयार्थ—

(पुव्वस्स) पूर्व के अर्थात् भावास्रव के भेदाभेद। (मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोहादओ) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग तथा कषाय हैं। (दु) और। (कमसो) क्रम से वे। (पण) पाँच। (पण) पाँच। (पणदस) पन्द्रह। (तिय) तीन। (चदु) चार प्रकार के। (विण्णेया) जानने चाहिए।

अर्थ—

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग एवं कषाय—ये भावास्रव के भेद क्रम से पाँच, पाँच, पन्द्रह, तीन और चार प्रकार के जानने चाहिए।

प्र०—संक्षेप से भावास्रव के कितने भेद हैं ?

उ०—संक्षेप से भावास्रव के पाँच भेद हैं—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग और कषाय।

प्र०—विस्तार से भावास्रव के भेद बताइये।

उ०—विस्तार से ३२ भेद हैं—५ मिथ्यात्व, ५ अविरति, १५ प्रमाद, ३ योग, ४ कषाय = ३२।

प्र०—मिथ्यात्व किसे कहते हैं ? इसमें पाँच भेद कौन-से हैं ?

उ०—तत्त्व का श्रद्धान नहीं होना मिथ्यात्व कहलाता है। इसके पाँच भेद—एकांत, विपरीत, संशय, वैनयिक एवं अज्ञान।

प्र०—एकान्त मिथ्यात्व का स्वरूप बताइये।

उ०—अनेक धर्मात्मक वस्तु में यह इसी प्रकार है, इस प्रकार के एकान्त अभिप्राय को एकान्त मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे वस्तु नित्य भी है और अनित्य भी है किन्तु कोई (बौद्ध) मतवाले वस्तु को अनित्य ही मानते हैं तथा कोई (वेदान्ती) सर्वथा नित्य ही मानते हैं। (अन्त-धर्म, गुण)।

प्र०—विपरीत मिथ्यात्व किसे कहते हैं।

उ०—उल्टे श्रद्धान को विपरीत मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे—केवली के कवलाहार होता है, परिग्रह सहित भी गुरु हो सकता है तथा स्त्री को भी मोक्ष प्राप्त हो सकता है आदि।

प्र०—संशय मिथ्यात्व का लक्षण बताओ ?

उ०—चलायमान श्रद्धान को संशय मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे—अहिंसा में धर्म है या नहीं, सम्यक्‌दर्शन, सम्यक्‌ज्ञान, व सम्यक्‌चारित्र—ये मोक्ष के मार्ग हैं या नहीं।

प्र०—वैनयिक मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०—सभी प्रकार के देव—सरागी-वीतरागी, सभी प्रकार के गुरु—परिग्रहरहित-परिग्रहसहित एवं सभी प्रकार के मतों को समान मानना वैनयिक मिथ्यात्व है।

प्र०—अज्ञान मिथ्यात्व का लक्षण बताइये।

उ०—हिताहित की परीक्षा न करके श्रद्धान करना अज्ञान मिथ्यात्व है।

प्र०—अविरति किसे कहते हैं, उसके ५ भेद कौन-से हैं ?

उ०—पाँच पापों से विरत (त्याग) नहीं होना अविरति है। उसके

पाँच भेद—हिंसा अविरति, असत्य अवरति, चौर्य अविरति, कुशील अविरति और परिग्रह अविरति ।

प्र०–प्रमाद किसे कहते हैं ? इसके पन्द्रह भेद बताओ ।

उ०–शुभ क्रियाओं में उत्साहपूर्व प्रवृत्ति नहीं करना प्रमाद है या स्वरूप की असावधानी । इसके पन्द्रह भेद—४ विकथा, ४ कषाय, ५ इन्द्रिय विषय, १ निद्रा और १ स्नेह है ।

प्र०–योग किसे कहते हैं ? उसके भेद बताइये ?

उ०–मन, वचन, काय की क्रिया को योग कहते हैं । इसके तीन भेद—मनोयोग, वचनयोग और काययोग ।

प्र०–कषाय के ४ भेद कौन से हैं ?

उ०–१– क्रोध, २–मान, ३– माया और ४– लोभ ।

द्रव्यास्रव का स्वरूप व भेद

णाणावरणादीणं जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि ।
दव्वासवो स णेओ, अणेयभेओ जिणक्खादो ॥३१॥

अन्वयार्थ—

(णाणावरणादीणं) ज्ञानावरण आदि कर्मों के । (जोग्गं) योग्य । (जं) जो । (पुग्गलं) पुद्गल । (समासवदि) आता है । (स) वह । (जिणक्खादो) जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा हुआ । (दव्वासवो) द्रव्यास्रव । (अणेयभेदो) अनेक प्रकार का । (णेओ) जानना चाहिए ।

अर्थ—

ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के योग्य जो पुद्गल आता है, वह द्रव्यास्रव जिनेन्द्र देव के द्वारा कहा हुआ अनेक प्रकार का जानना चाहिए ।

प्र०–द्रव्यास्रव किसे कहते हैं ?

उ०–ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के योग्य जो पुद्गल आता है, उसे द्रव्यास्रव कहते हैं ।

प्र०–संक्षेप में द्रव्यास्रव कितने प्रकार का है ?

उ०–द्रव्यास्रव संक्षेप में आठ प्रकार का है—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ।

प्र०—विस्तार से द्रव्यास्रव के भेद बताइये।

उ०—विस्तार से—ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ९, वेदनीय २, मोहनीय २८, आयु ४, नाम ९३, गोत्र २ और अन्तराय ५ के भेद से १४८ प्रकार का है। सूक्ष्मदृष्टि से इनके भी परिणामों की तारतम्यता की अपेक्षा से संख्यात, असंख्यात भेद भी हो जाते हैं। इसलिए ग्रन्थकार ने द्रव्यास्रव को (अणेय भेदो) अनेक भेद वाला कहा है।

भावबन्ध व द्रव्यबन्ध का लक्षण

बज्झदि कम्मं जेण दु चेदणभावेण भावबन्धो सो।
कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो ॥३२॥

अन्वयार्थ—

(जेण) जिस। (चेदणभावेण) मिथ्यात्वादि रूप आत्मपरिणाम से। (कम्मं) कर्म। (बज्झदि) बँधता है। (सो) वह। (भावबंधो) भावबन्ध है। (दु) और। (कम्मादपदेसाणं) कर्म और आत्मा के प्रदेशों का। (अण्णोण्णपवेसणं) एकमेक होना। (इदरो) द्रव्यबन्ध है।

अर्थ—

मिथ्यात्वादि रूप जिन चेतन परिणामों से कर्मबन्ध होता है वह भावबन्ध है और कर्म तथा आत्म-प्रदेशों का एकमेव होना द्रव्यबन्ध है।

प्र०—बन्ध किसे कहते हैं ?

उ०—जीव कषाय सहित होने से कर्म के योग्य कार्मण वर्गणारूप पुद्गल परमाणुओं को जो ग्रहण करता है, वह बन्ध है।

प्र०—बन्ध के कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं—१-भावबन्ध, २-द्रव्यबन्ध।

प्र०—भावबन्ध किसे कहते हैं ?

उ०—जिन मिथ्यात्वादि आत्म-परिणामों से कर्म बँधता है वह भावबन्ध कहलाता है।

प्र०—द्रव्यबन्ध किसे कहते हैं ?

उ०—जो कर्मबन्ध होता है उसे द्रव्यबन्ध कहते हैं।

प्र०—आत्मा अमूर्तिक है, कर्म मूर्तिक हैं। ऐसी स्थिति में आत्मा में कर्म बन्धन कैसे हो सकता है? बन्ध तो मूर्तिक का मूर्तिक के साथ होता है।

उ०—आत्मा अमूर्तिक है तथापि संसारी आत्मा में अनादिकाल से कर्म चिपके हुए हैं अतः यह कथंचित् मूर्तिक है। मूर्तिक होने के कारण ही उसका कर्मों के साथ बन्ध होता है। यहाँ मूर्तिक संसारी आत्मा के साथ मूर्तिक कर्मों का बन्ध जानना चाहिए। (मूर्तिक के साथ ही मूर्तिक का बन्ध यहाँ है।)

बन्ध के चार भेद व उनके कारण

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदादु चदुविधो बंधो।
जोगा पयडिपदेसा, ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ॥३३॥

अन्वयार्थ—

(बन्धो) बन्ध। (पयडिट्ठिदि अणुभागप्पदेसभेदा) प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से। (चदुविधो) चार प्रकार का है। (दु) और। (पयडिपदेसा) प्रकृति तथा प्रदेशबन्ध। (जोगा) योग से। (ठिदिअणुभागा) स्थिति और अनुभाग बन्ध। (कसायदो) कषाय से। (होंति) होते हैं।

अर्थ—

प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध के भेद से बन्ध चार प्रकार का है। इनमें प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध योग से तथा स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध कषाय से होते हैं।

प्र०—प्रकृतिबन्ध किसे कहते हैं?

उ०—कर्मों के स्वभाव को प्रकृतिबन्ध कहते हैं। जैसे—ज्ञानावरणादि।

प्र०—स्थितिबन्ध किसे कहते हैं?

उ०—ज्ञानावरणादि कर्मों का अपने स्वभाव से च्युत नहीं होना सो स्थितिबन्ध है।

प्र०—अनुभागबन्ध किसे कहते हैं?

उ०—ज्ञानावरणादि कर्मों के रस विशेष को अनुभागबन्ध कहते हैं।

प्र०—प्रदेशबन्ध किसे कहते हैं ?

उ०—ज्ञानावरणादि कर्म रूप होने वाले पुद्गल स्कन्धों के परमाणुओं की संख्या को प्रदेशबन्ध कहते हैं।

प्र०—चार प्रकार के बन्धों का निमित्त क्या है ?

उ०—इन चार प्रकार के बन्धों में प्रकृति और प्रदेशबन्ध योग के निमित्त से होते हैं तथा स्थिति और अनुभागबन्ध कषाय के निमित्त से होते हैं।

भावसंवर और द्रव्यसंवर का लक्षण

चेदणपरिणामो जो, कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ।
सो भावसंवरो, खलु दव्वस्सावरोहणे अण्णो ॥३४॥

अन्वयार्थ—

(जो) जो। (चेदणपरिणामो) आत्मा का भाव। (कम्मस्स) कर्म पुद्गल के। (आसवणिरोहणे) आस्रव के रोकने में। (हेऊ) कारण है। (सो) वह। (भावसंवरो) भावसंवर है। (दव्वस्स) कर्मरूप पुद्गल द्रव्य का। (आसवरोहणे) आस्रव रुकना। (खलु) निश्चय से। (अण्णो) अन्य अर्थात् द्रव्यसंवर है।

अर्थ—

आत्मा का जो परिणाम कर्म पुद्गल के रोकने में कारण है वह भावसंवर है तथा कर्म रूप पुद्गल द्रव्य का आस्रव रुकना निश्चय से द्रव्य संवर है।

प्र०—संवर के कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं—१-भावसंवर, २-द्रव्यसंवर।

प्र०—भावसंवर किसे कहते हैं ?

उ०—आस्रव को रोकने में कारणभूत आत्म-परिणाम भावसंवर है।

प्र०—द्रव्यसंवर किसे कहते हैं ?

उ०—कर्मरूप पुद्गल द्रव्य का आस्रव रुकना द्रव्यसंवर है।

भावसंवर के भेद

वदसमिदीगुत्तीओ ,धम्माणुपेहा परीसहजओ य ।
चारित्तं बहुभेया ,णायव्वा भावसंवरविसेसा ।।३५।।

अन्वयार्थ—

(वदसमिदीगुत्तीओ) व्रत, समिति, गुप्ति । (धम्माणुपेहा) धर्म, अनुप्रेक्षा । (परीसहजओ) परीषहजय । (य) और । (चारित्तं) चारित्र । (बहुभेया) ये अनेक प्रकार के । (भावसंवरविसेसा) भावसंवर के भेद । (णायव्वा) जानना चाहिए ।

अर्थ—

व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र—ये अनेक प्रकार के भावसंवर के भेद जानना चाहिए ।

प्र०—संक्षेप से भावसंवर के कितने भेद हैं ।

उ०—सात भेद हैं—व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र ।

प्र०—विस्तार से भावसंवर के भेद बताइये ।

उ०—विस्तार से भावसंवर के ६२ भेद हैं—५ व्रत, ५ समिति, ३ गुप्ति, १० धर्म, १२ अनुप्रेक्षा, २२ परीषहजय और ५ चारित्र = ५ + ५ + ३ + १० + १२ + २२ + ५ = ६२

प्र०—व्रत किसे कहते हैं ? पाँच व्रतों के नाम बताओ ।

उ०—पाँच पापों का त्याग करना व्रत है । ५ व्रत—अहिंसाव्रत, सत्यव्रत, अचौर्यव्रत, ब्रह्मचर्यव्रत और अपरिग्रहव्रत ।

प्र०—समिति किसे कहते हैं ? पाँच समितियाँ कौन-सी हैं ?

उ०—जीवों की रक्षा के लिए यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति करने को समिति कहते हैं । वे पाँच—१. ईर्या समिति, २. भाषा समिति, ३. एषणा समिति, ४. आदाननिक्षेपण समिति और ५. प्रतिष्ठापना समिति हैं ।

प्र०—गुप्ति किसे कहते हैं ? उसके तीन भेद बताइये ।

उ०—संसार भ्रमण के कारणभूत मन, वचन, काय तीनों योगों का निग्रह करना गुप्ति है । उसके तीन भेद—मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति हैं ।

प्र०–धर्म किसे कहते हैं ? उसके दस भेद बताइये।

उ०–जो आत्मा को संसार के दुःखों से छुड़ाकर उत्तम स्थान में प्राप्त करावे उसे धर्म कहते हैं। दस धर्म—उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिञ्चन्य, उत्तम ब्रह्मचर्य।

प्र०–अनुप्रेक्षा का लक्षण व उसके बारह भेद बताइये।

उ०–शरीरादिक के स्वरूप का बार-बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है। बारह अनुप्रेक्षाएँ—१. अनित्य, २. अशरण, ३. संसार, ४. एकत्व, ५. अन्यत्व, ६. अशुचि, ७. आस्रव, ८. संवर, ९. निर्जरा, १०. लोक, ११. बोधिदुर्लभ और १२. धर्म।

प्र०–परीषहजय किसे कहते हैं ? उसके बाईस भेद बताइये।

उ०–क्षुधा, तृषा (भूख-प्यास) आदि की वेदना होने पर कर्मों की निर्जरा के लिए उसे शान्त भावों से सह लेना परीषहजय कहलाता है। बाईस परीषह—१–क्षुधा, २–तृषा, ३–शीत, ४–उष्ण, ५–दंशमशक, ६–नाग्न्य, ७–अरति, ८–स्त्री, ९–चर्या, १०–निषद्या, ११–शय्या, १२–आक्रोश, १३–वध, १४–याचना, १५–अलाभ, १६–रोग, १७–तृण-स्पर्श, १८–मल, १९–सत्कार-पुरस्कार, २०–प्रज्ञा, २१–अज्ञान, २२–अदर्शन।

इन २२ परीषहों को जीतना २२ प्रकार का परीषहजय कहलाता है।

प्र०–चारित्र का लक्षण बताकर उसके पाँच भेद बताइये।

उ०–कर्मों के आस्रव में कारणभूत बाह्य-आभ्यन्तर क्रियाओं के रोकने को चारित्र कहते हैं। पाँच प्रकार का चारित्र—१–सामायिक, २–छेदोपस्थापना, ३–परिहारविशुद्धि, ४–सूक्ष्मसाम्पराय और ५–यथाख्यात।

प्र०–उपसर्ग और परीषह में क्या अन्तर है ?

उ०–उपसर्ग कारण है और परीषह कार्य है।

भावसंवर

१	२	३	४
५ व्रत	५ समिति	३ गुप्ति	१० धर्म
अहिंसा	ईर्या	मनोगुप्ति	उत्तम क्षमा
सत्य	भाषा	वचनगुप्ति	,, मार्दव
अचौर्य	एषणा	कायगुप्ति	,, आर्जव
ब्रह्मचर्य	आदाननिक्षेपण		,, शौच
अपरिग्रह	प्रतिष्ठापना		,, सत्य
			,, संयम
			,, तप
			,, त्याग
			,, आकिञ्चन्य
			,, ब्रह्मचर्य

५	६	७
१२ अनुप्रेक्षा	**२२ परीषहजय**	**५ चारित्र**
अनित्य	क्षुधा	सामायिक
अशरण	तृषा	छेदोपस्थापना
संसार	शीत	परिहारविशुद्धि
एकत्व	उष्ण	सूक्ष्मसाम्पराय
अन्यत्व	दंशमशक	यथाख्यात
अशुचि	नाग्न्य	
आस्रव	अरति	
संवर	स्त्री	
निर्जरा	चर्या	
लोक	निषद्या	
बोधि दुर्लभ	शय्या	
धर्म	आक्रोश	
	वध	
	याचना	
	अलाभ	
	रोग	
	तृणस्पर्श	
	मल	
	सत्कार-पुरस्कार	
	प्रज्ञा	
	अज्ञान	
	अदर्शन	

निर्जरा का लक्षण व उसके भेद

जहकालेण तवेण य भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण ।
भावेण सडदि णेया तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ।।३६।।

अन्वयार्थ—

(जहकालेण) यथाकाल में (अवधि पूरी होने पर) । (य) और । (तवेण) तप से । (भुत्तरसं) जिनका फल भाग लिया है । (कम्मपुग्गलं) ऐसा कर्म पुद्गल । (जेण) जिस । (भावेण) भाव से । (सडदि) झड़ जाता है । (च) और । (तस्सडणं) कर्मों का झड़ना । (इदि) इस प्रकार । (णिज्जरा) निर्जरा । (दुविहा) दो प्रकार की । (णेया) जाननी चाहिए ।

अर्थ—

अवधि पूरी होने पर और तप से जिसका फल भोग लिया है ऐसा कर्म पुद्गल जिन भावों से झड़ जाता है वह भावनिर्जरा है और कर्मों का झड़ना द्रव्यनिर्जरा है । इस प्रकार निर्जरा दो प्रकार की जाननी चाहिए ।

प्र०—निर्जरा किसे कहते हैं ? उसके भेद बताइये ।

उ०—बँधे हुए कर्मों का अंशतः झड़ना निर्जरा कहलाती है । निर्जरा के दो भेद हैं—१–भाव निर्जरा, २–द्रव्य निर्जरा । (दूसरे प्रकार से)—

१–सविपाक, २–अविपाक निर्जरा ।

प्र०—भावनिर्जरा किसे कहते हैं ?

उ०—जिन परिणामों से बँधे हुए कर्म एकदेश झड़ जाते हैं उसे भावनिर्जरा कहते हैं ।

प्र०—द्रव्यनिर्जरा किसे कहते हैं ?

उ०—बँधे हुए कर्मों का एकदेश निर्जरित होना द्रव्यनिर्जरा है ।

प्र०—सविपाक निर्जरा बताइये ।

उ०—अपनी अवधि पाकर या फल देकर बँधे हुए कर्मों का अंशतः झड़ना सविपाक निर्जरा है । यह निर्जरा समय के अनुसार पक कर अपने आप गिरे हुए आम के समान होती है ।

प्र०–अविपाक निर्जरा बताइये ?

उ०–तपश्चरण के द्वारा अवधि के पहले ही बँधे हुए कर्मों का एकदेश झड़ना अविपाक निर्जरा है। यह निर्जरा पाल में डालकर पकाये गये आम के समान होती है।

प्र०–मोक्षमार्ग की सहकारी या मुक्ति में कारणभूत निर्जरा कौन-सी है ?

उ०–अविपाक निर्जरा मोक्षमार्ग की सहकारी है। कारण कि सविपाक निर्जरा 'गजस्नान' के समान अप्रयोजनीय है।

प्र०–निर्जरा में विशेष कार्यकारी कौन है व कैसे ?

उ०–निर्जरा में विशेष कार्यकारी तप है। बिना तप के आत्मा कभी भी शुद्ध नहीं हो सकती है। बिना तपाये सोना शुद्ध नहीं होता, बिना अग्नि में तपाये रोटी नहीं पकती, उसी प्रकार बिना बाह्य-आभ्यन्तर तप के आत्मा पर लगा कर्ममैल छूटता नहीं है। यद्यपि सिद्धराशि के अनन्तवें भाग तथा अभव्यराशि के अनन्त गुणा कर्मपरमाणु प्रतिसमय खिरते हैं पर 'तप' रूप अलौकिक शक्ति के द्वारा इससे अधिक भी खिरते हैं।

प्र०–तप किसे कहते हैं ? संक्षेप में तप के भेद कितने हैं ?

उ०–संक्षेप में तप दो प्रकार का है—१–बाह्य तप, २–आभ्यन्तर तप।

प्र०–बाह्य तप किसे कहते हैं ?

उ०–जो बाहर से देखने में आता है अथवा जिसे अन्यजन भी करते हैं, वह बाह्य तप है।

प्र०–बाह्य तप के भेद बताओ।

उ०–१–अनशन, २–अवमौदर्य, ३–वृत्तिपरिसंख्यान, ४–रसपरित्याग, ५–विविक्तशय्यासन और ६–कायक्लेश।

प्र०–आभ्यन्तर तप किसे कहते हैं ?

उ०–जिन तपों का आत्मा से घनिष्ठ सम्बन्ध है वे आभ्यन्तर तप कहलाते हैं।

प्र०–आभ्यन्तर तप के भेद बताइये।

उ०–१–प्रायश्चित, २–विनय, ३–वैय्यावृत्य, ४–स्वाध्याय, ५–व्युत्सर्ग और ६–ध्यान।

प्र०–प्रायश्चित्त तप के भेद व लक्षण बताइये।

उ०–प्रायश्चित्त तप के नव भेद हैं—१–आलोचना, २–प्रतिक्रमण, ३–तदुभय, ४–विवेक, ५–व्युत्सर्ग, ६–तप, ७–छेद, ८–परिहार, ९–उपस्थापना। अपराध की शुद्धि करना प्रायश्चित्त है।

प्र०–विनय के भेद बताइये तथा लक्षण कहिये।

उ०–१–ज्ञान विनय, २–दर्शन विनय, ३–चारित्र विनय, ४–उपचार विनय। ये चार भेद हैं। पूज्य पुरुषों का आदर करना विनय है।

प्र०–वैय्यावृत्य का भेद व लक्षण बताइये।

उ०–वैय्यावृत्य तप के १० भेद हैं—१–आचार्य, २–उपाध्याय, ३–तपस्वी, ४–शैक्ष्य, ५–ग्लान, ६–गण, ७–कुल, ८–संघ, ९–साधु, १०–मनोज्ञ। इन दस प्रकार के मुनियों की सेवा करना दस प्रकार की वैय्यावृत्य है। शरीर तथा अन्य वस्तुओं से मुनियों की सेवा करना वैय्यावृत्य तप है।

प्र०–स्वाध्याय तप के भेद व लक्षण बताओ।

उ०–स्वाध्याय ५ प्रकार का है—१–वाचना, २–पृच्छना, ३–अनुप्रेक्षा, ४–आम्नाय और ५–धर्मोपदेश। ज्ञान की भावना में आलस्य नहीं करना स्वाध्याय है।

प्र०–व्युत्सर्ग के भेद व लक्षण बताइये।

उ०–व्युत्सर्ग तप के २ भेद—बाह्य और आभ्यन्तर। धन-धान्यादि बाह्य परिग्रहों का त्याग तथा क्रोधादि अशुभ भावों का त्याग। बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहों का त्याग व्युत्सर्ग तप है।

प्र०–ध्यान तप के भेद व लक्षण बताओ।

उ०–ध्यान तप के चार भेद हैं—१–आर्त्तध्यान, २–रौद्र ध्यान, ३–धर्म्य ध्यान और ४–शुक्ल ध्यान। चित्त की चंचलता को रोककर किसी एक पदार्थ के चिन्तन में लगाना ध्यान है।

प्र०–मुमुक्षु को कौन सा तप करना चाहिए? और क्यों?

उ०–मुमुक्षु को बाह्य और अन्तरंग दोनों तप करना आवश्यक है। इसके बिना मोक्ष की विधि बन नहीं सकती है। दोनों तप एक सिक्के के दो पहलू के समान हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं है। रोटी दोनों ओर से सेकी जाती है तब शरीर को पुष्ट करती है। वैसे ही दोनों तपों को तपने वाला ही सच्चे ज्ञानामृत का पान कर आत्मा को पुष्ट बनाकर मुक्ति-महल ले जा सकता है।

मोक्ष के भेद व लक्षण

सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू अप्पणो हु परिणामो ।
णेओ स भावमोक्खो दव्वविमोक्खो य कम्मपुहभावो ॥३७॥

अन्वयार्थ—

(जो) जो । (अप्पणो) आत्मा का । (परिणामो) परिणाम । (सव्वस्स) समस्त । (कम्मणो) कर्मों के । (खयहेदू) क्षय का कारण है । (स) वह । (हु) निश्चय से । (भावमोक्खो) भावमोक्ष है । (य) और । (कम्मपुहभावो) कर्मों का आत्मा से पृथक होना । (दव्वविमोक्खो) द्रव्यमोक्ष । (णेओ) जानना चाहिए ।

अर्थ—

आत्मा के जो परिणाम समस्त कर्मों के क्षय में कारण हैं वह निश्चय से भाव मोक्ष है और कर्मों का आत्मा से पृथक होना द्रव्य मोक्ष जानना चाहिए ।

प्र०—मोक्ष किसे कहते हैं ? इसके भेद बताइये ।
उ०—समस्त कर्मों का आत्मा से अलग हो जाना मोक्ष कहलाता है । मोक्ष के दो भेद हैं—भाव मोक्ष व द्रव्य मोक्ष ।

प्र०—मोक्ष किसे प्राप्त होता है ?
उ०—कर्मरहित जीव को मोक्ष प्राप्त होता है ।

प्र०—मोक्ष प्राप्त जीव कहाँ रहता है ? वहाँ से आता है या नहीं ?
उ०—मोक्ष प्राप्त जीव लोक के अग्रभाग, सिद्धालय में रहता है । वह वहाँ से फिर लौटकर कभी भी नहीं आता ।

प्र०—क्या संसार के सभी जीव मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं ?
उ०—नहीं, भव्य जीव ही मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं ।

प्र०—भव्य किसे कहते हैं ?
उ०—जिसमें सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र प्राप्त करने की योग्यता है, वह भव्य है ।

पुण्य और पाप का निरूपण

सुहअसुहभावजुत्ता, पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा।
सादं सुहाउ णामं, गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥३८॥

अन्वयार्थ—

(सुहअसुहभावजुत्ता) शुभ और अशुभ भाव से युक्त। (जीवा) जीव। (खलु) निश्चय से। (पुण्णं) पुण्य रूप। (पावं) पाप रूप। (हवंति) होते हैं। (सादं) सातावेदनीय। (सुहाउ) शुभ आयु। (णामं) शुभ नाम। (गोदं) उच्च गोत्र। (पुण्णं) पुण्य रूप हैं। (च) और। (पराणि) असातावेदनीय, अशुभ नाम कर्म, अशुभायु और नीच गोत्र। (पावं) पाप रूप हैं।

अर्थ—

शुभ भाव युक्त जीव पुण्यरूप तथा अशुभ भाव युक्त जीव पापरूप होते हैं। सातावेदनीय, शुभआयु, शुभनाम और उच्चगोत्र—ये पुण्यरूप कर्म हैं और दूसरे असातावेदनीय, अशुभ आयु, अशुभ नाम और नीच गोत्र पापरूप हैं।

प्र०—पुण्य कितने प्रकार का है ?

उ०—पुण्य दो प्रकार का है—भावपुण्य और द्रव्यपुण्य।

प्र०—पाप कितने प्रकार का है ?

उ०—पाप भी दो प्रकार का है—भावपाप और द्रव्यपाप।

प्र०—भावपुण्य और द्रव्यपुण्य का स्वरूप बताओ।

उ०—शुभ भावों को धारण करने वाले जीव भावपुण्य कहलाते हैं तथा कर्मों की प्रशस्त प्रकृतियों को द्रव्यपुण्य कहते हैं।

प्र०—शुभभाव कौन से हैं ? बताइये।

उ०-जीवों की रक्षा करना, सत्य बोलना, चोरी नहीं करना, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अरहन्तभक्ति करना, पञ्चपरमेष्ठी नमन, गुरुभक्ति, वैय्यावृत्य, दान, दया, मैत्री, प्रमोद आदि शुभ भाव हैं।

प्र०—अशुभ भाव कौन से हैं ?

उ०—हिंसा, झूठ, चोरी आदि पाँच पाप करना, देव-शास्त्र-गुरु की उपासना नहीं करना, गुरुओं की निन्दा करना, दान, दया, संयम, तपादि का पालन नहीं करना, क्रोध, मान, माया, लोभादि पाप भाव अशुभ भाव हैं।

प्र०—भाव पाप और द्रव्य पाप किसे कहते हैं ?

उ०—अशुभ भावों को धारण करने वाले जीव भाव पाप कहलाते हैं तथा कर्मों की अप्रशस्त प्रकृतियाँ द्रव्य पाप हैं।

प्र०—आठ कर्मों के कितने भेद हैं ?

उ०—आठ प्रकार के कर्म दो भेद वाले हैं—१-घातिया कर्म, २-अघातिया कर्म।

प्र०—घातिया कर्म किसे कहते हैं ?

उ०—आत्मा के अनुजीवी गुणों को घात करने वाले कर्म घातिया कहलाते हैं। ये पाप रूप ही हैं।

प्र०-अघातिया कर्म किसे कहते हैं ?

उ०—जो आत्मा के अनुजीवी गुणों का घात नहीं करते हैं वे अघातिया कर्म कहलाते हैं। अघातिया कर्मों में कुछ कर्म पुण्य रूप और कुछ कर्म पाप रूप कहलाते हैं।

प्र०—पाप प्रकृतियाँ कितनी और कौन-सी हैं ?

उ०—पाप प्रकृतियाँ १०० हैं—घातिया की ४७, असातावेदनीय १, नीचगोत्र १, नरकायु १ और नाम कर्म की ५० (नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति १, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी १, जाति में से आदि की ४ जातियाँ, संस्थान अन्त के ५, संहनन अन्त के ५, स्पर्शादिक अशुभ २०, उपघात १, अप्रशस्त विहायोगति १, स्थावर १, सूक्ष्म अपर्याप्त १, अनादेय १, अयशःकीर्ति १, अस्थिर, अशुभ १, दुर्भग १, दुःस्वर १, और साधारण १ कुल सौ।

प्र०—पुण्य प्रकृतियाँ कितनी और कौन-सी हैं ?

उ०—अड़सठ हैं—कर्मों की समस्त प्रकृतियाँ १४८ हैं उनमें से पाप-प्रकृतियाँ १०० घटाने से शेष रहीं ४८। उनमें नामकर्म की स्पर्शादि शुभ प्रकृतियाँ मिलाने से सम्पूर्ण पुण्य प्रकृतियाँ अड़सठ होती हैं।

प्र०—क्या पुण्य छोड़ने योग्य है ? यदि नहीं तो क्यों ?

उ०—नहीं, पुण्य कथंचित् ग्रहण करने योग्य है, इसको सर्वथा छोड़ना मुमुक्षु का कर्त्तव्य नहीं है क्योंकि पुण्य आत्मा को पवित्र करता है।

॥ इति द्वितीयोऽधिकारः ॥

तृतीयोऽधिकारः

व्यवहार और निश्चय मोक्षमार्ग का लक्षण

सम्मद्दंसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे ।
ववहारा णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा ॥३९॥

अन्वयार्थ—

(ववहारा) व्यवहारनय से । (सम्मद्दंसणणाणं) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान । (चरणं) सम्यक्चारित्र को । (मोक्खस्स) मोक्ष का । (कारणं) कारण । (जाणे) जानो । (णिच्छयदो) निश्चयनय से । (तत्तियमइओ) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र सहित । (णिओ) अपना । (अप्पा) आत्मा (मोक्ष का कारण जानो) ।

अर्थ—

व्यवहारनय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को मोक्ष का कारण जानो तथा निश्चयनय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र सहित अपना आत्मा मोक्ष का कारण जानो ।

प्र०—मोक्ष क्या है ?

उ०—आठ कर्मों से आत्मा का पूर्ण छुटकारा पाना मोक्ष है ।

प्र०—मोक्ष मार्ग कितने प्रकार के हैं ?

उ०—दो प्रकार के हैं—व्यवहार मोक्षमार्ग और निश्चय मोक्षमार्ग ।

प्र०—व्यवहार मोक्षमार्ग किसे कहते हैं ।

उ०—व्यवहारनय से सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मोक्षमार्ग है ।

प्र०—निश्चय मोक्षमार्ग कौन-सा है ।

उ०—रत्नत्रय युक्त आत्मा को निश्चय मोक्षमार्ग कहते हैं ।

प्र०—संसार में अनुपम रत्न बताइये ।

उ०—रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ।

रत्नत्रय युक्त आत्मा ही मोक्ष का कारण क्यों ?

रयणत्तयं ण वट्टइ, अप्पाणं मुयत्तु अण्णदवियम्हि ।
तम्हा तत्तियमइओ, होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा ॥४०॥

अन्वयार्थ—

(रयणत्तयं) रत्नत्रय (सम्यक्दर्शन, ज्ञान और चारित्र)। (अप्पाणं) आत्मा को। (मुयत्तु) छोड़कर। (अण्णदवियम्हि) दूसरे द्रव्य में। (ण) नहीं। (वट्टई) रहता। (तह्मा) इसलिए। (तत्तियमइओ) रत्नत्रय सहित। (आदा) आत्मा। (दु) ही। (मोक्खस्स) मोक्ष का। (कारणं) कारण। (होदि) होता है।

अर्थ—

रत्नत्रय आत्मा को छोड़कर दूसरे द्रव्यों में नहीं रहता है इसलिए रत्नत्रय सहित आत्मा ही मोक्ष का कारण होता है।

प्र०—निश्चयनय से रत्नत्रययुक्त आत्मा ही मोक्ष का कारण क्यों है ?

उ०—क्योंकि रत्नत्रय आत्मा अर्थात् जीवद्रव्य को छोड़कर अन्य में नहीं पाया जाता है।

प्र०—वे रत्नत्रय कौन-से हैं ?

उ०—१—सम्यक्दर्शन, २—सम्यक्ज्ञान, ३—सम्यक्चारित्र।

सम्यक्दर्शन किसे कहते हैं ?

जीवादीसद्दहणं, सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु।
दुरभिणिवेसविमुक्कं, णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि ॥४१॥

अन्वयार्थ—

(जीवादीसद्दहणं) जीवादि सात तत्वों का श्रद्धान करना। (सम्मत्तं) सम्यग्दर्शन है। (तं) वह। (अप्पणो) आत्मा का। (रूवं) स्वरूप है। (तु) और। (जम्हि) जिस सम्यग्दर्शन के। (सदि) होने पर। (दुरभिणिवेसविमुक्कं) संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रहित। (णाणं) ज्ञान। (खु) से। (सम्मं) सम्यक्ज्ञान। (होदि) होता है।

अर्थ—

जीवादि सात तत्वों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। यह सम्यक्-दर्शन आत्मा का वास्तविक स्वरूप है। इस सम्यक्दर्शन के होने पर ही ज्ञान सम्यक्ज्ञान कहलाता है। और वह ज्ञान संशय, विपर्यय तथा अनध्यवसाय से रहित होता है।

प्र०—सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

उ०—जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

प्र०—आत्मा का वास्तविक स्वरूप क्या है ?

उ०—सम्यक् दर्शन।

प्र०—ज्ञान में समीचीनता कब आती है ?

उ०—सम्यक् दर्शन के होने पर ज्ञान समीचीन या सम्यक् ज्ञान कहलाता है।

प्र०—सम्यक् ज्ञान में कौन से दोष नहीं होते ?

उ०—१—संशय, २—विपर्यय और ३—अनध्यवसाय।

प्र०—संशय किसे कहते हैं ?

उ०—विरुद्ध नाना कोटि के स्पर्श करने वाले ज्ञान को संशय कहते हैं। इसके होने पर किसी पदार्थ का निश्चय नहीं हो पाता, क्योंकि इसके होने पर बुद्धि सो जाती है—'समीचीनतया बुद्धिः शेते यस्मिन् सः संशयः'।

प्र०—विपर्यय किसे कहते हैं ?

उ०—विपरीत एक कोटि को स्पर्श करने वाला ज्ञान विपर्यय कहलाता है। जैसे—सीप को चाँदी समझ लेना।

प्र०—संशय और विपर्यय में क्या अन्तर है ?

उ०—संशय में सीप है या चाँदी ? ऐसा संशय बना रहता है। निर्णय नहीं हो पाता, परन्तु विपर्यय में एक कोटि का निश्चय होता है जैसे—सीप को सीप न समझकर चाँदी समझ लेना।

प्र०—अनध्यवसाय किसे कहते हैं ?

उ०—अध्यवसाय का अर्थ है निश्चय और इसका न होना अनध्यवसाय कहलाता है। जैसे रास्ते में चलते समय पैरों के नीचे अनेक चीजें आती हैं, पर उनमें से निश्चय किसी एक का भी नहीं हो पाता है, यही ज्ञान अनध्यवसाय कहलाता है।

सम्यक् ज्ञान का स्वरूप

संसयविमोहविब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स ।
गहणं सम्मण्णाणं सायारमणेयभेयं च ॥४२॥

अन्वयार्थ—

(संसयविमोहविब्भमविवज्जियं) संशय, अनध्यवसाय, विपर्यय रहित । (सायारं) आकार सहित । (अप्पपरसरूवस्स) अपने व दूसरे के स्वरूप का । (गहणं) ग्रहण करना अर्थात् जानना । (सम्मण्णाणं) सम्यक् ज्ञान है । (च) और । (अणेयभेयं) वह अनेक प्रकार का है ।

अर्थ—

संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रहित व आकार सहित अपने और पर के स्वरूप का जानना सम्यक् ज्ञान कहलाता है और वह सम्यक् ज्ञान अनेक प्रकार का है ।

प्र०—सम्यक्ज्ञान के कितने भेद हैं ?

उ०—पाँच भेद हैं—१–मतिज्ञान, २–श्रुतज्ञान, ३–अवधिज्ञान, ४–मनःपर्ययज्ञान और ५–केवलज्ञान ।

प्र०—सम्यक् ज्ञान के अनेक भेद क्यों कहे ?

उ०—यद्यपि सम्यक् ज्ञान के मूल में पाँच भेद ही हैं परन्तु पाँचों में केवलज्ञान को छोड़कर अन्य चार ज्ञानों के अनेक भेद हैं इसलिए सम्यक्-ज्ञान के ग्रन्थकार ने 'अणेयभेयं'—अनेक भेद कहे हैं ।

दर्शनोपयोग का स्वरूप

जं सामण्णं गहणं, भावाणं णेव कट्टुमायारं ।
अविसेसिदूण अट्ठे, दंसणमिदि भण्णए समए ॥४३॥

अन्वयार्थ—

(अट्ठे) पदार्थ के विषय में । (अविसेसिदूण) विशेष अंश को ग्रहण किये बिना । (आयारं) आकार को । (णेव) नहीं । (कट्टु) करके । (भावाणं) पदार्थों का । (जं) जो । (सामण्णं) सामान्य । (गहणं) ग्रहण करना अर्थात् जानना । (समए) शास्त्र में । (दंसणं) दर्शन । (इदि) इस प्रकार । (भण्णए) कहा जाता है ।

अर्थ—

पदार्थ के विषय में पदार्थों का विशेष अंश ग्रहण नहीं करके, पदार्थों का जो सामान्य ग्रहण अर्थात् जानना है उसे आगम में दर्शन कहा जाता है।

प्र०—किसी भी पदार्थ में कितने अंश पाये जाते हैं ?

उ०—प्रत्येक पदार्थ में दो अंश पाये जाते हैं—१–सामान्य अंश और २–विशेष अंश।

प्र०—सामान्य अंश को ग्रहण करने वाला क्या कहा जाता है ?

उ०—सामान्य अंश का जानना दर्शन कहलाता है। इसमें पदार्थ के आकार का ज्ञान नहीं होता है, केवल सत्ता का भान होता है। जैसे—सामने कोई पदार्थ आने पर सबसे पहले यह कोई पदार्थ है इतना मात्र जानना 'दर्शन' है।

प्र०—विशेष अंश का ग्राहक किसे कहते हैं ?

उ०—सामान्य अंश के ग्रहण के बाद विशेष अंश का ग्राहक या जानने वाला 'ज्ञान' कहलाता है। जैसे—सामने कोई पदार्थ आने पर पदार्थ मात्र का ग्रहण करने वाला तो दर्शन है पर वह पदार्थ काला है, पीला है या लाल है आदि रूप विकल्प सहित ज्ञान होना 'ज्ञान' कहलाता है।

दर्शन और ज्ञान की उत्पत्ति का नियम

दंसणपुव्वं णाणं छदमत्थाणं ण दुण्णि उवओगा।
जुगवं जम्हा केवलिणाहे जुगवं तु ते दोवि ॥४४॥

अन्वयार्थ—

(छदमत्थाणं) अल्पज्ञानियों के। (दंसणपुव्वं) दर्शनपूर्वक। (णाणं) ज्ञान होता है। (जम्हा) क्योंकि। (दुण्णि) दोनों। (उवओगा) उपयोग। (जुगवं) एक साथ। (ण) नहीं होते हैं। (तु) किन्तु। (केवलिणाहे) केवलज्ञानी के। (ते) वे। (दोवि) दोनों ही। (जुगवं) एक साथ होते हैं।

अर्थ—

अल्पज्ञानियों के दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है क्योंकि उनके दोनों उपयोग एक साथ नहीं होते हैं किन्तु केवलज्ञानी के वे दोनों ही उपयोग एक साथ होते हैं।

प्र०—दर्शन किसे कहते हैं ?

उ०—सामान्य अंश को जानना दर्शन है।

प्र०—ज्ञान किसे कहते हैं ?

उ०—विशेष अंश को जानना ज्ञान है।

प्र०—छद्मस्थ (अल्पज्ञानी) किसे कहते हैं ?

उ०—संक्षेप में पाँच ज्ञान होते हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान। इन पाँच ज्ञानों में से प्रारम्भ के चार ज्ञान वाले छद्मस्थ (अल्पज्ञ) कहलाते हैं।

प्र०—केवली किसे कहते हैं ?

उ०—जिन्हें केवलज्ञान हो जाता है वे सर्वज्ञ या केवली कहलाते हैं।

प्र०—छद्मस्थ जीव के उपयोग का क्रम बताइये।

उ०—छद्मस्थ जीव पहले देखते हैं और फिर बाद में जानते हैं, किसी पदार्थ को देखे बिना छद्मस्थ उसे जान ही नहीं सकते इसलिए छद्मस्थों के पहले दर्शनोपयोग होता है और बाद में ज्ञानोपयोग होता है।

प्र०—केवलज्ञानी के उपयोग का क्रम बताइये।

उ०—केवलज्ञानी किसी भी पदार्थ को एक ही साथ देखते और जानते हैं इसलिए उनका दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग एक साथ होता है (अक्रम)।

प्र०—केवलज्ञानी किसे कहते हैं ?

उ०—जो त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को युगपत् जानते हैं वे केवलज्ञानी कहलाते हैं।

व्यवहार चारित्र का स्वरूप

असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।
वदसमिदिगुत्तिरूवं, ववहारणया दु जिणभणियं ॥४५॥

अन्वयार्थ—

(ववहारणया) व्यवहारनय से। (असुहादो) अशुभ कार्य से। (विणिवित्ती) निवृत्ति। (य) और। (सुहे) शुभ कार्य में। (पवित्ती) प्रवृत्ति। (जिणभणियं) जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा हुआ। (चारित्तं) चारित्र। (जाण) जानो। (दु) और वह चारित्र। (वदसमिदिगुत्तिरूवं) व्रत, समिति, गुप्तिरूप है।

अर्थ—

अशुभ कार्यों को छोड़ना और शुभ कार्यों में प्रवृत्ति करना जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहा हुआ व्यवहार चारित्र जानो और वह चारित्र पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्तिरूप से १३ प्रकार का है।

प्र०–व्यवहार चारित्र किसे कहते हैं ?

उ०–अशुभ कार्यों—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह पापों का त्याग करना, अयत्नाचार पूर्वक चलना, बोलना, बैठना, खाना आदि न करना तथा अशुभ मन-वचन और काय को वश में करना तथा शुभ कार्यों में प्रवृत्ति करना व्यवहार चारित्र है।

निश्चय चारित्र का स्वरूप

बहिरब्भंतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठं।
णाणिस्स जं जिणुत्तं, तं परमं सम्मचारित्तं ॥४६॥

अन्वयार्थ—

(भवकारणप्पणासट्ठं) संसार के कारणों को नष्ट करने के लिए। (णाणिस्स) ज्ञानी पुरुष का। (जं) जो। (बहिरब्भंतरकिरियारोहो) बाह्य और आभ्यन्तर क्रियाओं का रोकना। (तं) वह। (जिणुत्तं) जिनेन्द्र देव द्वारा कहा हुआ। (परमं) उत्कृष्ट निश्चय। (सम्मचारित्तम्) सम्यकचारित्र है।

अर्थ—

संसार के कारणों को नष्ट करने के लिए ज्ञानी पुरुषों के द्वारा बाह्य-आभ्यन्तर क्रियाओं को रोकना निश्चय सम्यक् चारित्र, ऐसा जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा हुआ है।

प्र०–संसार किसे कहते हैं ?

उ०–'संसृति इति संसार' जहाँ जीव चारों गतियों में भ्रमता है वह संसार है।

प्र०–संसार का कारण क्या है ?

उ०–बाह्य और आभ्यन्तर क्रियाएँ संसार को कारण हैं।

प्र०–बाह्य क्रिया कौन-सी हैं ?

उ०–कायिक और वाचनिक क्रियाएँ—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह आदि बाह्य क्रियाएँ हैं।

प्र०—आभ्यन्तर क्रियाएँ कौन-सी हैं ?

उ०—मानसिक भीतरी क्रियाओं को आभ्यन्तर क्रिया कहते हैं। जैसे—क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, राग-द्वेष आदि। मानसिक अशुभ विचारों का द्वन्द्व आदि सब आभ्यन्तर क्रियाएँ हैं।

प्र०—बाह्य-आभ्यन्तर क्रिया कौन रोकता है ?

उ०—'णाणी'—ज्ञानी पुरुष अपनी मानसिक, वाचनिक व कायिक आभ्यन्तर और बाह्य क्रियाओं को रोकते हैं।

प्र०—बाह्य-आभ्यन्तर क्रियाओं के निरोध से ज्ञानी के किसकी प्राप्ति होती है ?

उ०—निश्चय चारित्र की।

प्र०—निश्चय चारित्र किसे कहते हैं ?

उ०—बाह्य-आभ्यन्तर क्रियाओं के निरोध से प्रादुर्भूत आत्मा की शुद्धि को निश्चय सम्यक् चारित्र कहते हैं।

मोक्ष के हेतुओं को पाने के लिए ध्यानकी प्रेरणा

दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।
तम्हा पयत्तचित्ता, जूयं झाणं समब्भसह ॥४७॥

अन्वयार्थ—

(जं) क्योंकि। (मुणी) मुनिजन। (दुविहं पि) दोनों ही प्रकार के। (मोक्खहेउं) मोक्ष के कारणों को। (णियमा) नियम से। (झाणे) ध्यान में। (पाउणदि) पा लेते हैं। (तम्हा) इसलिए। (जूयं) तुम सब। (पयत्तचित्ता) सावधान होकर। (झाणं) ध्यान का। (समब्भसह) अभ्यास करो।

अर्थ—

क्योंकि मुनिराज दोनों ही प्रकार के कारणों को नियम से ध्यान में पा लेते हैं इसलिए तुम सब सावधान होकर ध्यान का अभ्यास करो।

ध्यान करने का उपाय

मा मुज्झह मा रज्जह, मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअत्थेसु।
थिरमिच्छह जइ चित्तं, विचित्तझाणप्पसिद्धीए ॥४८॥

अन्वयार्थ—

(विचित्तझाणप्पसिद्धीए) अनेक प्रकार के ध्यान की सिद्धि के लिए। (जइ) यदि। (चित्तं) चित्त को। (थिरं) स्थिर करना। (इच्छह) चाहते हो तो। (इट्ठणिट्ठअत्थेसु) इष्ट और अनिष्ट पदार्थों में। (मा मुज्झह) मोह मत करो। (मा रज्जह) राग मत करो। (मा दुस्सह) द्वेष मत करो।

अर्थ—

(भव्य जीवो !) अनेक प्रकार के ध्यान की सिद्धि के लिए यदि चित्त को स्थिर करना चाहते हो तो इष्ट और अनिष्ट पदार्थों में मोह मत करो। राग मत करो। द्वेष मत करो।

प्र०—ध्यान की सिद्धि के लिये आवश्यक सामग्री क्या है ?

उ०—चित्त (मन) की एकाग्रता।

प्र०—चित्त की एकाग्रता के लिये आवश्यक सामग्री क्या है ?

उ०—प्रिय पदार्थों में मोह मत करो, राग मत करो और अप्रिय पदार्थों में द्वेष मत करो।

प्र०—मोह किसे कहते हैं ?

उ०—परवस्तु को अपना मानना व अपने को भूल जाना मोह कहलाता है।

प्र०—राग किसे कहते हैं ?

उ०—इष्ट वस्तु में प्रीति को राग कहते हैं।

प्र०—द्वेष किसे कहते हैं ?

उ०—अनिष्ट वस्तु में अप्रीति को द्वेष कहते हैं।

प्र०—ध्यान के अनेक प्रकार कौन-से हैं ?

उ०—१—पिण्डस्थ, २—पदस्थ, ३—रूपस्थ, ४—रूपातीत।

पिण्डस्थ—'पिण्डस्थं स्वात्म चिन्तनं'—अर्थात् शरीर में स्थित आत्मा का चिन्तन करना।

पदस्थ—'मन्त्रवाक्यों' के चिन्तन को पदस्थ ध्यान कहते हैं।

रूपस्थ—शुद्धचिद्रूप अर्हन्तों का ध्यान।

रूपातीत—'रूपातीतं निरञ्जनं' सिद्धपरमेष्ठी का ध्यान करना।

प्र०—ध्यान की आवश्यकता क्यों है ?

उ०—क्योंकि मोक्षमार्ग की सिद्धि बिना ध्यान के नहीं हो सकती है।

ध्यान करने योग्य मन्त्र

पणतीससोलछप्पणचदुदुगमेगं च जवह ज्झाएह ।
परमेट्ठिवाचयाणं, अण्णं च गुरुवएसेण ॥ ४९ ॥

अन्वयार्थ—

(परमेट्ठिवाचयाणं) परमेष्ठी वाचक । (पणतीस) पैंतीस । (सोल) सोलह । (छ) छह । (पण) पांच । (चउ) चार । (दुगं) दो । (च) और । (एगं) एक अक्षर के मन्त्र का । (जवह) जप करो । (ज्झाएह) ध्यान करो । (च) और । (अण्णं) अन्य मन्त्रों को । (गुरुवएसेण) गुरु के उपदेश से जपो और ध्यान करो ।

अर्थ—

परमेष्ठी वाचक पैंतीस, सोलह, छह, पाँच, चार, दो और एक अक्षर के मन्त्र का जप करो, ध्यान करो और अन्य मन्त्रों को गुरु के उपदेश से जपो व ध्यान करो ।

प्र०—परमेष्ठी किसे कहते हैं ?

उ०—जो परम पद में स्थित हैं वे परमेष्ठी कहलाते हैं ।

प्र०—परमेष्ठीवाचक पैंतीस अक्षरों का मन्त्र कौन-सा है ?

उ०—णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

इसे णमोकार मन्त्र, अनादिनिधन मन्त्र, मंगलमन्त्र आदि अनेक नामों से कहा जाता है ।

प्र०—णमोकार मन्त्र के अनेक नाम कौन-से हैं ?

उ०—१—णमोकार मन्त्र
२—नमस्कार मन्त्र
३—मंगल मन्त्र
४—परमेष्ठीवाचक मन्त्र
५—अनादिनिधन मन्त्र
६—चौरासी लाख मन्त्रों का राजा
७—तरण-तारण मन्त्र
८—महामन्त्र
९—अपराजित मन्त्र

१०–मूल मन्त्र
११–मन्त्रराज
१२–सर्वमान्य मन्त्र

प्र०–ओम् को परमेष्ठी वाचक माना है, इसकी सिद्धि कीजिए।

उ०–अरहंत, अशरीरी अर्थात् सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, मुनि (साधु) ये पाँच परमेष्ठी हैं। इनके पहले अक्षरों के मिलाने से 'ओम्' की सिद्धि होती है।

अरहंत का पहला अक्षर 'अ'
अशरीरी (सिद्ध) का पहला अक्षर 'अ' = अ + अ = आ
आचार्य का पहला अक्षर 'आ' = आ + आ = आ
उपाध्याय का पहला अक्षर उ = आ + उ = ओ
मुनि का पहला अक्षर म् = ओ + म् = ओम् शब्द बनता है।

अ + अ + आ इन समान वर्णों के मिलाने के लिए संस्कृत व्याकरण में 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र है। सूत्रानुसार दीर्घ 'आ' बन जाता है। आ + उ दोनों के मिलाने के लिए आद्‌गुणः सूत्र लगने से आ और उ मिलकर ओ बनता है। ओ के साथ म् मिलाने से 'ओम' शब्द बन जाता है।

प्र०–ओम् की मान्यता।

उ०–ओम् यह सर्वमान्य मन्त्र है। यह जैन व जैनेतर सभी सम्प्रदायों में पूज्य माना गया है।

जैन लोग—ओम् को परमेष्ठी वाचक मानते हैं।

जैनेतर लोग अ + उ + म्—तीनों मिलाकर ओम् मानते हैं। तथा उनके अनुसार 'अ' विष्णुवाचक है।

'उ' महेश्वर वाचक है।
और म् ब्रह्मा का वाचक है।

प्र०–'ओम्, ओ३म् और 'ॐ' में से शुद्ध कौन-सा है ?

उ०–तीनों (ओम्, ओ३म्, ॐ) शुद्ध हैं। तीनों की व्याकरण से सिद्धि होती है। मोऽनुस्वारः सूत्र से ओम के म् का अनुस्वार होने पर 'ॐ' हो जाता है। 'ओ३म्' का तन्त्र व्याकरण के अनुसार निपातन से सिद्ध है।

प्र०—णमोकार मन्त्र जपते समय मन को स्थिर रखने का उपाय बताइये ?

उ०—णमोकार मंत्र जाप्य के लिए आचार्यों ने मुख्य तीन विधियाँ बताई हैं—इनमें मन स्थिर हो जाता है—(१) पूर्वानुपूर्वी विधि, (२) पश्चातानुपूर्वी विधि, (३) यथातथ्यानुपूर्वी विधि। वैसे यह मन्त्र १८४३२ प्रकार से बोला जा सकता है।

पूर्वानुपूर्वी विधि—णमोकार मन्त्र जैसा है उसी रूप मे पढ़ना।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।

णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं॥

इस विधि की प्राय: आदत होने से मन चंचलता से इधर-उधर दौड़ जाता है। अतः दूसरी विधि उपयोगी देखिये।

पश्चातानुपूर्वी—पीछे से पढ़िये।

णमोलोए सव्वसाहूणं, णमो उवज्झायाणं।

णमो आइरियाणं णमो सिद्धाणं णमो अरहंताणं॥

इस विधि से भी आगे बढ़कर—

यथातथ्यानुपूर्वी—ऊपर से, नीचे से, मध्य से कहीं से भी पढ़िए। बस शर्त यही है कि पाँच पद से अधिक न हों व कम भी न हों।

जैसे—णमो अरहन्ताणं। णमो उवज्झायाणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं। णमो लोए सव्वसाहूणं।

१	२	३	४	५
२	३	४	५	१
३	४	५	२	१
४	५	३	१	२
५	४	२	३	१

क्रम से, आगे-पीछे दूसरा पद फिर तीसरा आदि क्रम से पढ़ने पर मन एकदम स्थिर हो जाता है। यह ध्यान की एक अमूल्य निधि है।

प्र०–जाप्य को इस प्रकार आगे-पीछे बोलने में कोई दोष नहीं लगता ?

उ०–नहीं। जैसे—लड्डू को किधर से भी खाइये, मीठा-ही-मीठा है। उसी प्रकार णमोकार मंत्र का (३५ अक्षर का मन्त्र) जाप कहीं से भी जपिये, आनन्द और शांति का ही प्रदाता है।

प्र०–ध्यान की सिद्धि के लिए जाप्य की विधि बताइये।

उ०–जाप्य तीन प्रकार से किया जाता है १–वाचनिक, २–मानसिक, ३–उपांशु जाप्य।

वाचनिक—वचन से बोलकर जप करना।

मानसिक—मन-मन में उच्चारण करना।

उपांशु—ओठों को हिलाते हुए मन्द-मन्द स्वर में जाप करना।

इनमें मानसिक जाप उत्तम है। उसका फल भी उत्तम है। 'उपांशु' जाप मध्यम है तथा वाचनिक जाप जघन्य है।

प्र०–एक ही जप को १०८ बार बोलते-बोलते भी मन स्थिर नहीं रहता है। उसे रोकने का क्या उपाय है ?

उ०–एक माला में एक ही मन्त्र का उच्चारण करना आवश्यक नहीं है। स्थिरता के लिए एक ही माला में भिन्न-भिन्न जाप भी कर सकते हैं, जिससे चञ्चल मन रुक जाता है जैसे—ओम् नमः। ओरेम् ह्रीं नमः। ओरेम् अ सि आ उ सा नमः। ओरेम् अर्हद्भ्यो नमः। सिद्धेभ्यो नमः। सूरिभ्यो नमः। पाठकेभ्यो नमः। साधुभ्यो नमः आदि रूप से चौबीस तीर्थंकर, दस धर्म, रत्नत्रय, सोलहकारण भावना, पूज्य परमेष्ठियों के वाचक नाम आदि के आधार से भिन्न-भिन्न जाप करें। उस समय अन्दर में विचार करें, एक बार जिस जाप को जप लिया है पुनः नहीं जपूँगा। नये-नये की खोज में मन केन्द्रित हो जायेगा। ध्यान की साधना में सफलता प्राप्त होगी।

अरहंत परमेष्ठी का स्वरूप

णट्ठचदुघाइकम्मो, दंसणसुहणाणवीरियमईओ।
सुहदेहत्थो अप्पा, सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥ ५० ॥

अन्वयार्थ—

(णट्ठचदुघाइकम्मो) जिसने चार घातिया कर्म नष्ट कर दिये हैं। (दंसणसुहणाणवीरियमईओ) जो दर्शन, सुख, ज्ञान तथा वीर्यमय है।

(सुहदेहत्थो) शुभ देह में स्थित है। (सुद्धो) वह शुद्ध। (अप्पा) आत्मा। (अरिहो) अरिहंत है। (विचिंतिज्जो) वह ध्यान करने योग्य है।

अर्थ—

जिसने चार घातिया कर्म नष्ट कर दिये हैं। जो दर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्य से सहित हैं, शुभदेह में स्थित हैं वे शुद्ध आत्मा अरिहंत हैं और ध्यान करने योग्य हैं।

प्र०—नित्य ध्यान करने योग्य कौन हैं ?

उ०—'अरिहंत'।

प्र०—अरिहंत किन्हें कहते हैं ?

उ०—जिसने चार घातिया कर्म नष्ट कर दिये हैं तथा जो अनन्त दर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्य से युक्त हैं, उन्हें अरिहन्त कहते हैं।

प्र०—घातिया कर्म किसे कहते हैं ? वे चार कौन से हैं ?

उ०—जो जीव के अनुजीवी गुणों का घात करते हैं वे घातिया कर्म कहलाते हैं। वे चार—१—ज्ञानावरण, २—दर्शनावरण, ३—मोहनीय और ४—अन्तराय हैं।

प्र०—अनुजीवी गुण किसे कहते हैं ?

उ०—भावस्वरूप गुणों को अनुजीवी गुण कहते हैं।

प्र०—अनन्त चतुष्टय कौन से हैं ?

उ०—अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य—ये अनन्त-चतुष्टय कहलाते हैं।

प्र०—किस कर्म के नाश से कौन-सा गुण प्रगट होता है ?

उ०—ज्ञानावरण कर्म के क्षय से अनन्तज्ञान।

दर्शनावरण	,,	,,	अनन्तदर्शन।
मोहनीय	,,	,,	अनन्तसुख।
अन्तराय	,,	,,	अनन्तवीर्य प्रकट होता है।

प्र०—अरिहन्त जिस शुभ देह में स्थित रहते हैं उसका नाम बताइये।

उ०—परमौदारिक शरीर को शुभ देह कहते हैं। अरिहन्त भगवान का यही शरीर होता है।

प्र०—परमौदारिक शरीर किसे कहते हैं ?

उ०—जिस शरीर में से शरीराश्रित अनन्त निगोदिया जीव पूर्णरूपेण

निकल जाते हैं जो स्फटिक के समान शुद्ध स्वच्छ होता है वह शरीर परमौदारिक शरीर कहलाता है।

प्र०—अरिहन्तों के साथ शुद्ध विशेषण क्यों दिया ?

उ०—अठारह दोषों से रहित होने से वे शुद्ध आत्मा हैं इसलिए शुद्ध विशेषण दिया है।

सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप

णट्ठट्ठकम्मदेहो, लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरुसायारो अप्पा, सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो ॥ ५१ ॥

अन्वयार्थ—

(णट्ठट्ठकम्मदेहो) आठ कर्म और पाँच शरीर रहित। (लोया-लोयस्स) लोक और अलोक का (जाणओ) ज्ञाता। (दट्ठा) और द्रष्टा। (पुरुसायारो) पुरुषाकार। (लोयसिहरत्थो) लोक के शिखर पर स्थित। (अप्पा) आत्मा। (सिद्धो) सिद्ध परमेष्ठी हैं। (झाएह) तुम सभी उनका ध्यान करो।

अर्थ—

आठ कर्मों तथा पाँच शरीरों से रहित, लोक-अलोक को जानने व देखने वाले, पुरुषाकार से लोक के शिखर पर स्थित आत्मा सिद्ध परमात्मा है, उनका ध्यान करो।

प्र०—ध्यान के लिए योग्य कौन हैं ?

उ०—सिद्ध परमात्मा ध्यान के योग्य हैं।

प्र०—सिद्ध परमात्मा कैसे होते हैं ?

उ०—जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय—इन आठ कर्मों से रहित हैं, औदारिक, वैक्रयिक, आहारक, तैजस व कार्मण शरीर से रहित हैं, वे लोक-अलोक को जानने वाले हैं। वे सिद्ध परमेष्ठी हैं।

प्र०—सिद्ध परमेष्ठी कहाँ रहते हैं ?

उ०—लोक के अग्रभाग में रहते हैं।

प्र०—लोक के अग्रभाग को क्या कहते हैं ?

उ०—'सिद्धालय'।

प्र०—सिद्धालय में सिद्धों का आकार बताइये।

उ०—सिद्ध परमेष्ठी का आकार पुरुषाकार है। वे लोकाग्र में अपने अंतिम शरीर से किञ्चित् न्यून आकार के रूप में रहते हैं।

प्र०—सिद्ध परमेष्ठी की प्रतिमा कैसी होती है?

उ०—सिद्ध परमेष्ठी की प्रतिमा अष्टप्रातिहार्य रहित तथा चिह्न रहित होती है।

प्र०—अरहन्त परमेष्ठी की प्रतिमा कैसी होती है?

उ०—नासाग्र दृष्टि, वीतराग मुद्रा अष्टप्रातिहार्य, यक्ष-यक्षिणी और चिह्नादि परिकर सहित प्रतिमा अरहन्त परमेष्ठी की होती है।

प्र०—सिद्धालय में अनन्त सिद्ध एक साथ कैसे रहते हैं? (वह सिर्फ ४५ लाख योजन का है) क्या वे एक दूसरे से बाधित नहीं होते हैं?

उ०—यद्यपि सिद्धक्षेत्र ४५ लाख योजन का है फिर भी वहाँ अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठी रहते हैं। यह 'अवगाहन' गुण की विशेषता है। शुद्ध आत्मा अमूर्तिक है अतः सभी सिद्ध अमूर्तिक होने से परस्पर बाधा को प्राप्त नहीं होते हैं।

प्र०—उदाहरण देकर समझाइये।

उ०—जैसे—एक कमरे में एक हजार पावर का लट्टू (बल्ब) का प्रकाश फैल रहा है उसी में उसी पावर के सौ-दो सौ और भी बल्ब लगा दीजिए। सबका प्रकाश, प्रकाश में समाता जाता है। कोई किसी को बाधा नहीं पहुँचाता है ठीक उसी प्रकार सिद्धालय में चैतन्य बल्ब रूप आत्माओं का ज्ञान प्रकाश, अनन्त आत्माओं का एक साथ विस्तरित होकर रहता है, किसी को बाधा नहीं होती है।

आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप

दंसणणाणपहाणे, वीरियचारित्तवरतवायारे।
अप्पं परं च जुंजइ, सो आइरिओ मुणी झेओ॥ ५२॥

अन्वयार्थ—

(जो) जो। (मुणी) मुनि। (दंसणणाणपहाणे) दर्शन और ज्ञान की प्रधानता सहित। (वीरियचारित्तवरतवायारे) वीर्य, चारित्र तथा श्रेष्ठ तपाचार में। (अप्पं) अपने को। (च) और। (परं) दूसरों को

(जुंजइ) लगाते हैं। (सो) वे। (आइरिओ) आचार्य। (झेओ) ध्यान करने योग्य हैं।

अर्थ—

जो दर्शन, ज्ञान की प्रधानता से युक्त हैं। वीर्य, चारित्र तथा श्रेष्ठ तप में अपने को तथा शिष्यों को लगाते हैं वे आचार्य ध्यान करने योग्य हैं।

प्र०—आचार्य परमेष्ठी किन्हें कहते हैं ?

उ०—जो पंचाचार का स्वयं पालन करते हैं तथा शिष्यों से भी पालन कराते हैं वे आचार्य परमेष्ठी कहलाते हैं।

प्र०-पंचाचार के नाम व लक्षण बताइये।

उ०-पंचाचार—१-दर्शनाचार, २-ज्ञानाचार, ३-चारित्राचार, ४-तपाचार, ५-वीर्याचार।

दर्शनाचार—निर्दोष सम्यक् दर्शन का पालन करना दर्शनाचार है।

ज्ञानाचार—अष्टांग सहित सम्यक् ज्ञान की आराधना करना ज्ञानाचार है।

चारित्राचार—तेरह प्रकार के चारित्र का निर्दोष रूप से आचरण करना।

तपाचार—बारह प्रकार के तपों का निर्दोष रीति से पालन करना।

वीर्याचार—अपनी शक्ति नहीं छिपाते हुए उत्साहपूर्वक संयम की आराधना करना वीर्याचार है।

प्र०-आचार्य परमेष्ठी का उपकार बताइये।

उ०-भव्यजीवों को जिनधर्म की दीक्षा देकर मोक्षमार्ग में लगाना, हित की शिक्षा देना, शिष्यों का संग्रह-निग्रह आदि आचार्य परमेष्ठी के उपकार हैं।

उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप

जो रयणत्तयजुत्तो, णिच्चं धम्मोवदेसणे णिरदो।
सो उवज्झाओ अप्पा, जदिवरवसहो णमो तस्स ॥५३॥

अन्वयार्थ—

(रयणत्तयजुत्तो) रत्नत्रय से युक्त। (जो) जो। (अप्पा) आत्मा। (णिच्चं) नित्य। (धम्मोवदेसणे) धर्मोपदेश देने में। (णिरदो)

तत्पर है। (जदिवरवसहो) यतियों में श्रेष्ठ। (सो) वह। (उव-ज्झाओ) उपाध्याय परमेष्ठी है। (तस्स) उसको। (णमो) नमस्कार हो।

अर्थ—

रत्नत्रय से युक्त, जो आत्मा नित्य धर्मोपदेश देने में तत्पर है मुनियों में श्रेष्ठ वे उपाध्याय परमेष्ठी हैं। उनको नमस्कार है।

प्र०—मुनियों में श्रेष्ठ कौन है ?

उ०—'उपाध्याय परमेष्ठी'।

प्र०—'उपाध्याय परमेष्ठी' कौन कहलाते हैं।

उ०—जो रत्नत्रय से युक्त हैं, नित्यधर्मोपदेश देने में तत्पर हैं वे 'उपाध्याय परमेष्ठी' हैं।

प्र०—रत्नत्रय कौन-से हैं ?

उ०—सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र—ये तीन रत्न हैं।

प्र०—उपाध्याय परमेष्ठी का उपकार बताइये।

उ०—भव्य जीवों को सत्य मार्ग का उपदेश देना तथा शिष्यों को पाठन कराना उनका महान् उपकार है।

साधु परमेष्ठी का स्वरूप

दंसणणाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं।
साधयदि णिच्चसुद्धं साहू स मुणी णमो तस्स ॥५४॥

शब्दार्थ—

(जो) जो। (मुणी) मुनि। (हु) निश्चय से (दंसणणाणसमग्गं) दर्शन और ज्ञान से परिपूर्ण। (मोक्खस्स) मोक्ष के। (मग्गं) मार्गभूत। (चारित्तं) चारित्र को। (णिच्चसुद्धं) हमेशा शुद्ध रीति से। (साधयदि) सिद्ध करते हैं। (स) वह। (साहू) साधु परमेष्ठी है। (तस्स) उन्हें। (णमो) नमस्कार है।

अर्थ—

जो मुनि निश्चय से दर्शन और ज्ञान से परिपूर्ण हैं, मोक्षमार्ग में कारणभूत चारित्र को नित्य शुद्ध रीति से सिद्ध करते हैं वे साधु परमेष्ठी कहलाते हैं। उन्हें हमारा नमस्कार हो।

प्र०—मोक्षमार्ग कौन-सा है ?

उ०—निश्चय से सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र मोक्षमार्ग है।

प्र०—साधु कौन कहलाते हैं ?

उ०—जो रत्नत्रय की साधना शुद्ध रीति से करते हैं वे साधु परमेष्ठी कहलाते हैं।

ध्येय, ध्याता, ध्यान का स्वरूप

जं किंचिवि चितंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहू।
लद्धूणय एयत्तं तदाहु तं तस्स णिच्चयं झाणं ॥५५॥

अन्वयार्थ—

(जदा) जिस समय। (साहू) साधु। (एयत्तं) एकाग्रता को। (लद्धूणय) प्राप्त कर। (जं) जिस। (किंचिवि) किसी भी ध्यान करने योग्य वस्तु को। (चितंतो) चिंतन करता हुआ। (णिरीहवित्ती) इच्छारहित हो जाता है। (तदा) उस समय। (हु) निश्चय से (तं) वह। (तस्स) उसका। (णिच्चयं) निश्चय से। (झाणं) ध्यान। (हवे) होता है।

अर्थ—

जिस समय साधु विषय-कषायों को त्याग कर अरहन्तादि किसी भी ध्यानयोग्य वस्तु का ध्यान करता हुआ, इच्छारहित होता है। (आत्म-चिन्तन में लीन हो जाता है।) उस समय उसके निश्चय से ध्यान होता है।

प्र०—साधु के निश्चय ध्यान कब होता है ?

उ०—जब साधु विषयकषायों से विमुख होकर अरहन्तादि का ध्यान करता हुआ आत्म-चिन्तन में लीन हो जाता है तब उसके निश्चय ध्यान होता है।

प्र०—निश्चय ध्यान किसे कहते हैं ?

उ०—पर से भिन्न स्व आत्मा में लीनता निश्चय ध्यान है।

प्र०—ध्यान करने वाला क्या कहलाता है ?

उ०—'ध्याता' कहलाता है।

प्र०—जिसका ध्यान किया जाता है उन्हें क्या कहते हैं ?

उ०—'ध्येय' कहते हैं।

प्र०—चित्त की एकाग्रता को क्या कहते हैं ?

उ०—'ध्यान' कहते हैं।

प्र०—ध्यान का फल क्या है ?

उ०—निराकुल सुख की प्राप्ति ध्यान का फल है।

परम ध्यान का लक्षण

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह् किंवि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे झाणं ॥५६॥

अन्वयार्थ—

(किंवि) कुछ भी। (मा चिट्ठह) शरीर से चेष्टा न करो। (मा जंपह) मुंह से न बोलो। (मा चिंतह) मन से न सोचो। (जेण) जिससे। (अप्पा) आत्मा। (अप्पम्मि) आत्मा में (थिरो) स्थिर। (होइ) होकर। (रओ) लवलीन हो। (इणमेव) यही। (परं) उत्कृष्ट। (झाणं) ध्यान। (हवे) है।

अर्थ—

शरीर से चेष्टा न करो। मुंह से कुछ भी न बोलो। मन से कुछ भी मत सोचो जिससे आत्मा, आत्मा में स्थिर होकर लवलीन हो यही उत्कृष्ट ध्यान है।

प्र०—ध्यान परम कौन-सा है ?

उ०—मानसिक, वाचनिक और कायिक व्यापार को छोड़कर आत्मा का आत्मा में लीन हो जाना परम ध्यान है।

प्र०—परम ध्यान की सिद्धि कैसे होती है ?

उ०—वीतरागी, निर्ग्रन्थ, दिगम्बर मुनिराज को ही परम ध्यान की सिद्धि होती है।

ध्यान के उपाय

तवसुदवदवं चेदा झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा।
तम्हा तत्तियणिरदा तल्लद्धीए सदा होइ ॥५७॥

अन्वयार्थ—

(जम्हा) क्योंकि। (तवसुदवदवं) तप, श्रुत और व्रत को धारण करने वाला। (चेदा) आत्मा। (झाणरहधुरंधरो) ध्यानरूपी रथ की धुरा को धारण करने में समर्थ। (हवे) होता है। (तम्हा) इसलिए।

(तस्सलद्धीए ।) उस ध्यान की प्राप्ति के लिए । (सदा) हमेशा । (तत्तियणिरदा) उन तीनों में लवलीन (होह) होओ ।

अर्थ—

क्योंकि तप, श्रुत और व्रत को धारण करने वाला आत्मा उस ध्यानरूपी रथ की धुरा को धारण करने में समर्थ होता है इसलिए उस ध्यान की प्राप्ति के लिए हमेशा उन तीनों में लवलीन होओ ।

प्र०—ध्याता कैसा होना चाहिए ?

उ०—बारह तप, पाँच महाव्रतों का पालन करने वाला एवं शास्त्रों का मनन करने वाला तपवान, श्रुतवान और व्रतवान आत्मा ही योग्य ध्याता हो सकता है ।

प्र०—क्यों ?

उ०—वही ध्यानरूपी रथ की धुरा को धारण करने में समर्थ होता है ।

प्र०—ध्यानी का वाहन बताइये ।

उ०—ध्यानरूपी 'रथ' ध्यानी का वाहन है ।

प्र०—ध्यानरूपी रथ में यात्रा करने वाला किस नगर में प्रवेश करता है ?

उ०—'मोक्षनगर में' प्रवेश करता है ।

प्र०—ध्यान की सिद्धि के लिए आवश्यक सामग्री क्या है ?

उ०—ध्यान की सिद्धि के लिए—तप, श्रुत और व्रतों का परिपालन करना आवश्यक है ।

ग्रन्थकार की प्रार्थना

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा दोससंचयचुदा सुदपुण्णा ।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचंदमुणिणा भणियं जं ॥ ५८ ॥

अन्वयार्थ—

(तणुसुत्तधरेण) अल्पज्ञानी । (णेमिचंदमुणिणा) नेमिचन्द्र मुनि ने । (जं) जो (इणं) यह । (दव्वसंगहं) द्रव्यसंग्रह नामक ग्रन्थ । (भणियं) कहा है । (सुदपुण्णा) शास्त्र के ज्ञाता । (दोससंचयचुदा) समस्त दोषों से रहित । (मुणिणाहा) मुनिराज । (सोधयंतु) शुद्ध करें ।

अर्थ—

अल्पज्ञानी नेमिचन्द्र मुनि ने जो यह द्रव्यसंग्रह नामक ग्रन्थ कहा है, शास्त्र के ज्ञाता समस्त दोषों से रहित मुनिराज शुद्ध करें।

प्र०—इस ग्रन्थ का नाम क्या है ?

उ०—'द्रव्य-संग्रह' है।

प्र०—'द्रव्यसंग्रह' के रचयिता कौन थे ?

उ०—आचार्यश्री १०८ नेमिचन्द्र मुनि।

प्र०—अल्पज्ञानी शब्द किस बात का सूचक है ?

उ०—आचार्य की लघुता प्रदर्शन एवं विनय गुण का प्रतीक है।

प्र०—यहाँ शास्त्र शुद्धि करने का अधिकार किसे दिया है ?

उ०—निर्दोष मुनिराज को जो कि समस्त शास्त्रों के ज्ञाता हैं। (वे मुनिराज ही शास्त्र शुद्ध करने के अधिकारी हैं।)

॥ इति तृतीयोऽधिकारः ॥